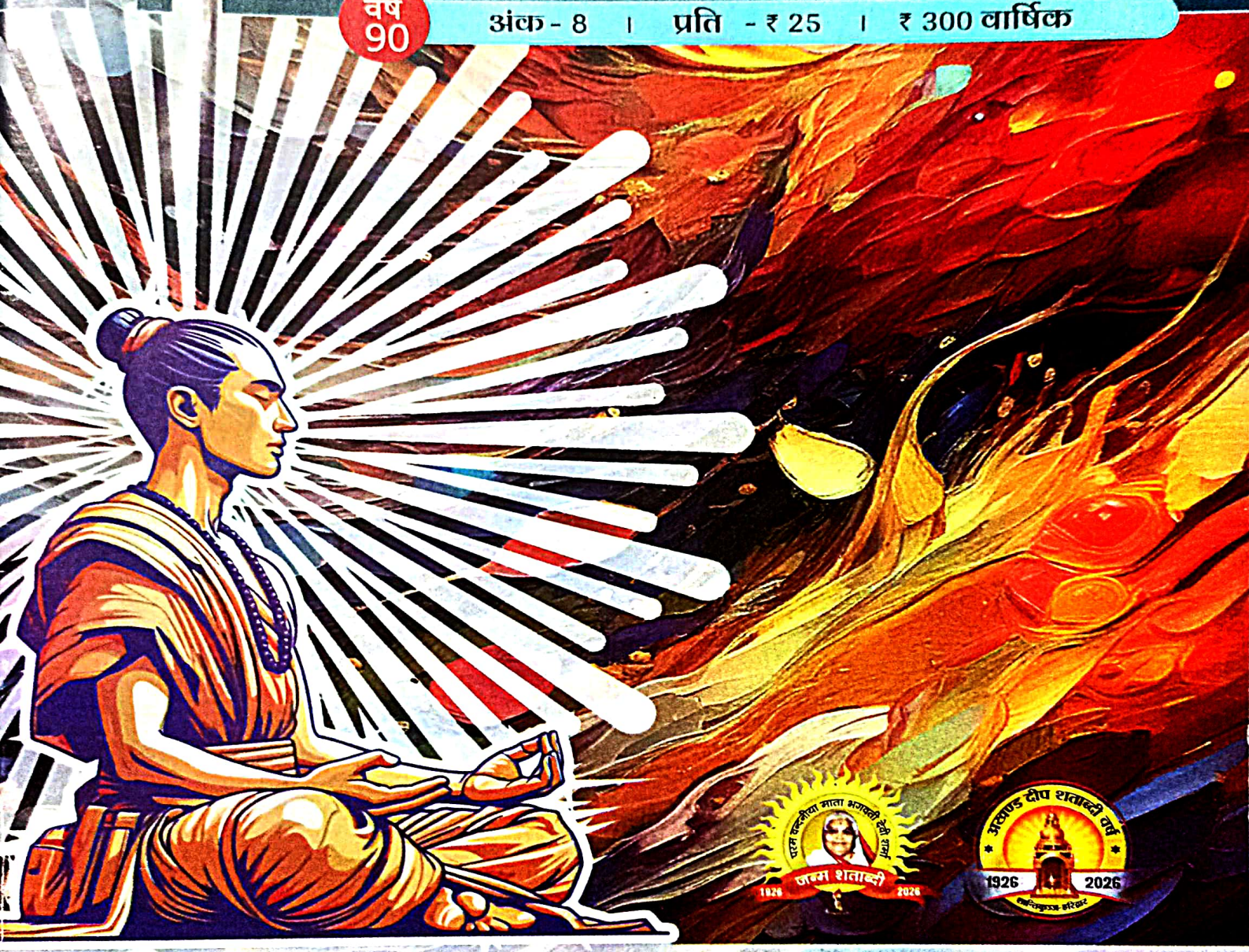
अगस्त

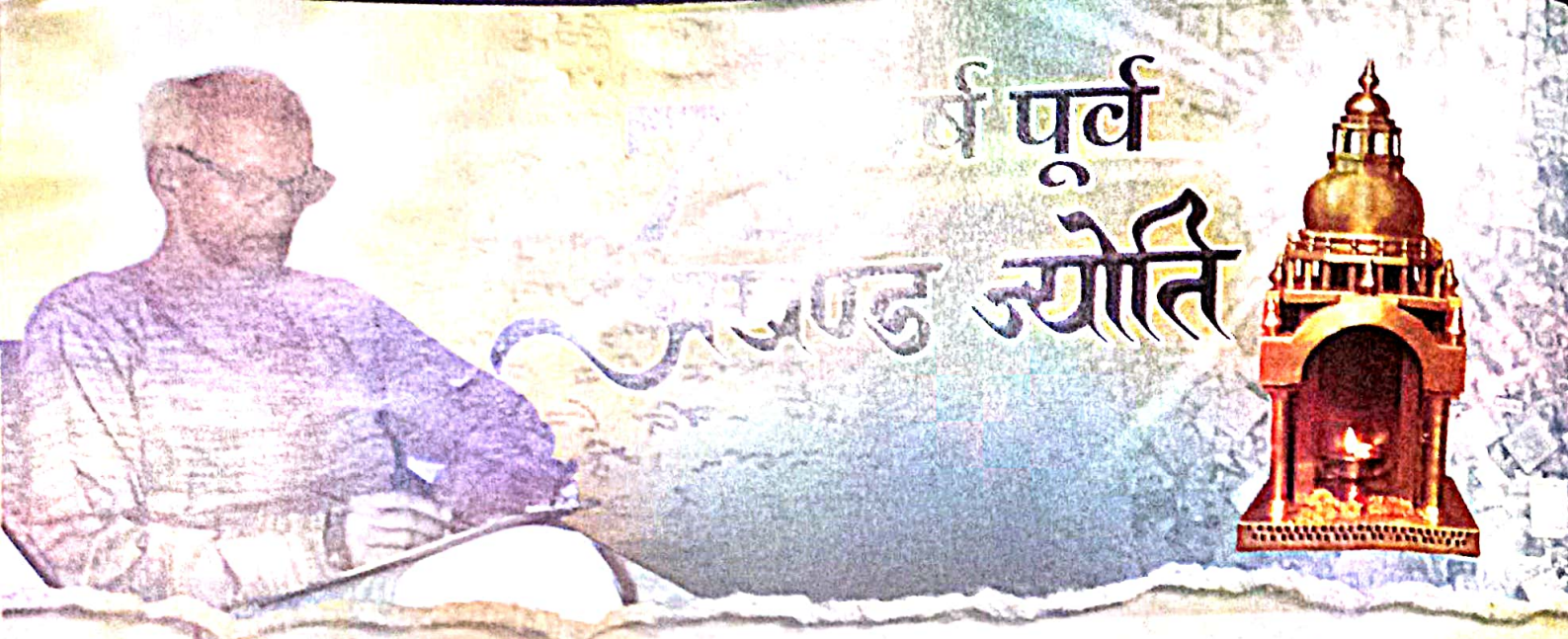
धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 90 | अंक - 8 | प्रति - ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक



7 ब्रह्मानंद की अनुभूति
22 व्यावहारिक अध्यात्म के प्राथमिक सोपान
31 जीवन में समायोजन
37 एकाग्रता— सफलता का आधार



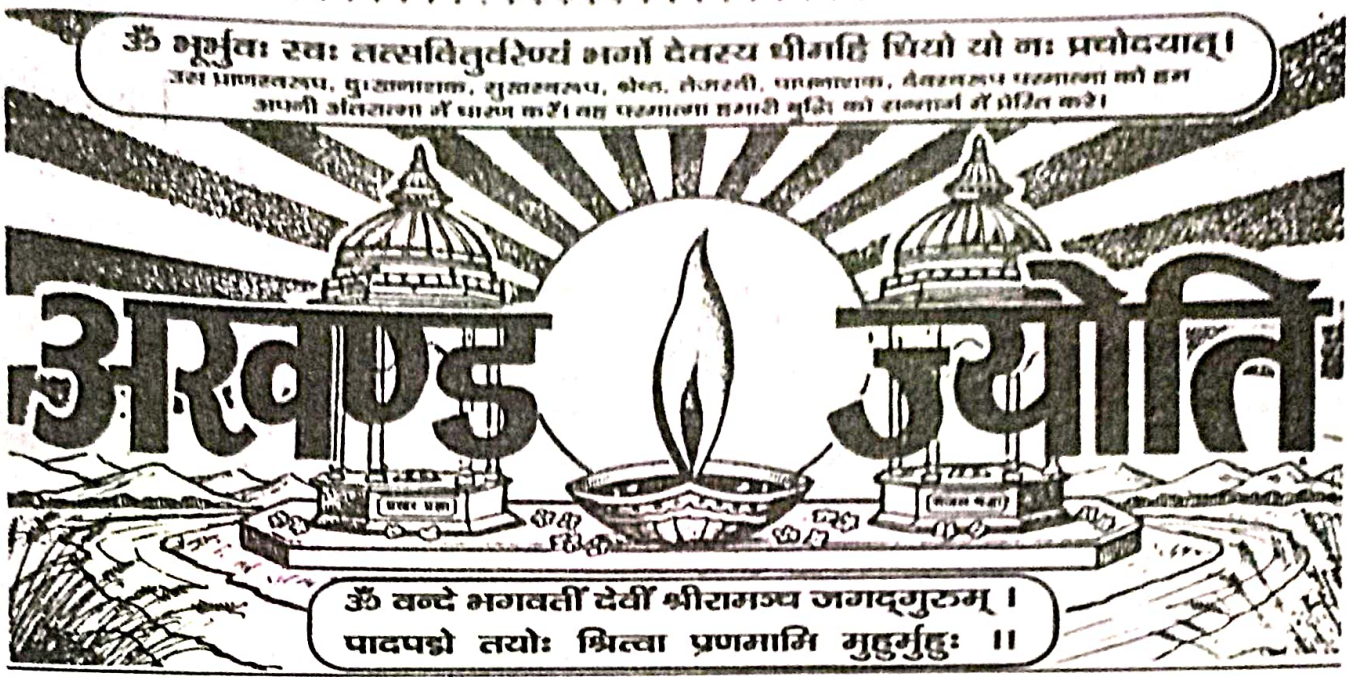
गायत्री द्वारा पापों की निवृत्ति

यह प्रकट है कि संसार में अधिकांश दुःख हमारे पापों के परिणामस्वरूप होते हैं। कई बार कर्मफल तुरंत मिल जाता है, जिसके साथ बुराई की गई है उसके द्वारा प्रत्याक्रमण द्वारा, सामाजिक अपकीर्ति द्वारा, लोगों के असंतोष एवं असहयोग के कारण होने वाली हानि द्वारा, राजदंड द्वारा उस बुराई का दंड मिल जाता है। इनसे भी कोई व्यक्ति बच जाए तो ईश्वरीय निष्पक्ष न्याय द्वारा प्राप्त होने वाले दंड से कोई बच नहीं सकता। अंग-भंग, अपूर्ण, रोगग्रस्त, हीन बुद्धि लोगों को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इनको दैवी दंड भुगतना पड़ रहा है। अपना कर्त्तव्य ठीक प्रकार पालन करते हुए भी कई बार अनायास कोई आकस्मिक दैवी विपत्ति आ जाती है या प्रयत्न करते हुए भी सफलता नहीं मिलती तो यही कहना पड़ता है कि यह हमारे पूर्वकृत कर्म का, प्रारब्ध का फल है।

यदि मनुष्य पापकर्मों से बचा रहे तो निश्चय ही वह दुःखों से बचा रहेगा। यद्यपि दुःखों के अन्य कारण भी हैं। निर्दोष व्यक्ति भी कभी-कभी अत्याचारियों द्वारा सताए जाते हैं या सामूहिक दोषों का फल भी व्यक्ति को भोगना पड़ता है, परंतु यह बात ध्रुव सत्य है कि पाप का परिणाम तो दुःख ही हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति पाप न करे,तो उसके प्रारब्ध में दुःखों का विधान, किस प्रकार हो सकता है?

(अखण्ड ज्योति, अगस्त-1951, पृष्ठ - 3)





संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड
जयसिंहपुरा, मथुरा (281 003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036,
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
व्हाट्सएप नं. 9927086290 (केवल मेसेज करें)

वर्ष	:	90
अंक	:	08
अगस्त	:	2026
श्रावण-भाद्रपद	:	2083
प्रकाशन तिथि	:	01.07.2026

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में सामान्य डाक से	:	6000/-

विश्वमाता का विश्व अभियान

(क्रमशः)

विश्वमाता का विश्व अभियान सभी को आश्चर्यों से अभिभूत करने वाला था। युगऋषि पूज्य गुरुदेव वर्ष 1990 ई. को गायत्री जयंती की प्रातःवेला में सूक्ष्म शरीर से सूक्ष्म साधना के लिए प्रस्थान कर चुके थे। अपने गुरु-अपने आराध्य की अंतिम विदाई को माताजी ने धीरज के साथ संपन्न किया। इसके बाद तो जैसे उनके जीवन का नया रूप-नया आयाम प्रकट हुआ। भव्य एवं विशाल श्रद्धांजलि समारोह में श्रद्धा समर्पित कर वे जैसे विश्वमाता बन गईं। उनके प्रकाश की प्रखरता, प्रचंडता शत-सहस्र नहीं, अनंत गुना हो उठी। शपथ समारोह में उनकी अध्यक्षता में देशभर के कार्यकर्त्ताओं ने शपथ ली। घर-घर देवस्थापना की गई। गुरुदेव-माताजी के साथ वेदमाता घर-घर जा विराजीं। इसके पश्चात विश्वव्यापी अश्वमेध अभियान आरंभ हुआ, जो देखते-देखते देव संस्कृति दिग्विजय का विश्वव्यापी अभियान बन गया। यह विश्वमाता की आध्यात्मिक ऊर्जा का विश्वव्यापी विस्फोट था। गायत्री परिवार के परिजनों की गायत्री-साधना के जैसे चक्रवाती तूफान स्थान-स्थान पर उठने लगे। इसमें आने वाले लोगों की, उन्हें होने वाली आध्यात्मिक अनुभूतियों व उपलब्धियों की गणना किसी भी तरह संभव न थी। इनकी संख्या में असंख्य व अनंत कहना भी जैसे कम ही था। विश्वमाता भगवती देवी स्वयं विश्व के विविध स्थानों पर पहुँचकर जन-मन-जीवन को कृतकृत्य व कृतार्थ कर रही थीं। वे जहाँ जातीं, वहीं उनका ईश्वरीय ऐश्वर्य प्रकट होता। यह उनके ईश्वरीय रूप, ईश्वरीय प्रकाश का ऐसा प्रकटन था, जिसे प्रकट करने में अक्षरों की अक्षय सामर्थ्य बहुत कम है। ❐

विषय सूची

- आवरण—1 — 1
- आवरण—2 — 2
- विश्वमाता का विश्व अभियान — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  डिजिटल डिटॉक्स का सामूहिक प्रयास — 5
- ब्रह्मानंद की अनुभूति — 7
- सत्कर्मों की महिमा — 10
- ब्रह्म ही गायत्री है — 11
- मुक्ति का मार्ग — 13
- **पर्व विशेष—रक्षाबंधन पर्व**
  पवित्र बंधन का पर्व — 15
- स्वाध्याय करें भी, कराएँ भी — 17
- हरि व्यापक सर्वत्र समाना — 18
- अध्यात्म का मार्ग — 20
- व्यावहारिक अध्यात्म के प्राथमिक सोपान — 22
- ऋषि परिवारों का आविर्भाव — 23
- शिक्षा ही नहीं, विद्या भी — 24
- सुखी जीवन का राज़ — 28
- कृतज्ञता — 30
- जीवन में समायोजन — 31
- एकात्म मानवतावाद — 34
- एकाग्रता—सफलता का आधार — 37
- जीवन रेखा हैं नदियाँ — 38
- **हमारा युग निर्माण सत्संकल्प—7**
  जीवन दर्शन के चार सूत्र — 41
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—209**
  मतिभ्रम एवं मनोभ्रम पर शोध — 45
- **युगगीता—315**
  धर्म-अधर्म का भेद नहीं समझती राजसी बुद्धि — 48
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  सुखी दांपत्य जीवन (पूर्वार्द्ध) — 50
- **विश्वविद्यालय परिसर से—254**
  राष्ट्र-निर्माण का आधार बना विश्वविद्यालय — 58
- **साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला**
  विज्ञान का सृजन-अनुसंधान — 61
- **अपनों से अपनी बात**
  शताब्दी साधना वर्ष की अलौकिक परिणतियाँ — 64
- गुरु-वेदना बँटाता हूँ (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

एकाग्रचित्त साधना के माध्यम से ब्रह्मानंद की अनुभूति

अगस्त-सितंबर, 2026 के पर्व-त्योहार

रविवार	09 अगस्त	कामिका एकादशी	सोमवार	07 सितंबर	अजा एकादशी
बुधवार	12 अगस्त	हरियाली अमावस्या	गुरुवार	10 सितंबर	कुशाग्रहणी अमावस्या
शनिवार	15 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस	सोमवार	14 सितंबर	श्री गणेश चतुर्थी/ हरतालिका व्रत
सोमवार	17 अगस्त	नाग पंचमी	मंगलवार	15 सितंबर	ऋषि पंचमी
बुधवार	19 अगस्त	तुलसी जयंती	गुरुवार	17 सितंबर	विश्वकर्मा जयंती
रविवार	23 अगस्त	पवित्रा एकादशी	मंगलवार	22 सितंबर	जलझूलनी एकादशी
शुक्रवार	28 अगस्त	श्रावणी पूर्णिमा/ रक्षाबंधन	बुधवार	23 सितंबर	वामन जयंती
सोमवार	31 अगस्त	बहुला चौथ	शुक्रवार	25 सितंबर	अनंत चतुर्दशी
बुधवार	02 सितंबर	हलषष्ठी	शनिवार	26 सितंबर	वंदनीया माताजी महाप्रयाण/महालयारंभ
शुक्रवार	04 सितंबर	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी	बुधवार	30 सितंबर	परमवंदनीया माताजी जयंती

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

डिजिटल डिटॉक्स का सामूहिक प्रयास



आज हम डिजिटल युग में जी रहे हैं, जिसमें बढ़ते स्क्रीन टाइम के साथ तनाव जीवन का अंग बनता जा रहा है और नींद की कमी से लेकर तमाम तरह की शारीरिक समस्याओं का खतरा बढ़ रहा है। साथ ही व्यक्ति वास्तविक जगत् से कट रहा है, अपने कर्त्तव्यों को सही ढंग से नहीं निभा पा रहा है। जीवन की उत्पादकता भी प्रभावित हो रही है तथा परिवार बिखर रहे हैं एवं समाज का ताना-बाना प्रभावित हो रहा है। अत: व्यक्तिगत ही नहीं, सामूहिक स्तर पर डिजिटल डिटॉक्स समय की आवश्यकता है।

ऐसे में महाराष्ट्र के वडगाँव की चर्चा प्रासंगिक हो जाती है, जो सामुदायिक स्तर पर डिजिटल डिटॉक्स की मिसाल के रूप में सामने आया है। इस गाँव में शाम के सात बजते ही सायरन बजता है, जो इस बात का संकेत होता है कि अब लोग अपना मोबाइल, टीवी और सोशल मीडिया बंद कर लें।

गाँव के लिए यह डिजिटल डिटॉक्स घंटा होता है, जब वे लगभग डेढ़ घंटे तक टेक्नॉलोजी से दूर रहकर अध्ययन और आत्मसंवाद में समय बिताते हैं और अपने परिवारजनों के बीच रहते हैं। प्रतिदिन शाम सात से रात साढ़े आठ बजे तक इस अद्‌भुत सामाजिक अनुशासन का उदाहरण अनुकरणीय है, जब लोग डिजिटल एडिक्शन के शिकार होते जा रहे हैं और इसके दुष्प्रभावों के निराकरण के लिए उन्हें डिजिटल डिटॉक्स क्लीनिक में जाना पड़ रहा है।

वडगाँव का उदाहरण अपनाते हुए हर गाँव एवं समुदाय पारस्परिक संवाद, पारिवारिक मेल-जोल एवं अध्ययन जैसी गतिविधियों को अपनाकर डिजिटल व्यसन के दुष्प्रभावों से बच सकता है। वडगाँव में इस परंपरा का शुभारंभ कोविड-19 लॉकडाउन के पश्चात हुआ, जब क्या बच्चे, क्या बड़े, सभी डिजिटल उपकरणों पर अत्यधिक निर्भर हो गए थे, जिससे बच्चों की पढ़ाई बुरी तरह से प्रभावित हो रही थी और पारिवारिक संवाद समाप्त हो रहा था।

ऐसे में सामूहिक रूप से डिजिटल उपकरणों से दूरी का निर्णय लिया गया। नियम सही ढंग से लागू हों, इसके लिए वार्ड स्तरीय निगरानी टीमों का भी गठन किया गया। शाम के समय डिजिटल डिटॉक्स घंटे के दौरान बच्चे व विद्यार्थी अपना अध्ययन करते हैं। बड़े व बुजुर्ग पारिवारिक संवाद करते हैं, कहानियाँ सुनाते हैं और उपयोगी विषयों पर चर्चा करते हैं।

इसी बीच गाँव में चौपाल सजती है, जहाँ ग्रामवासी गाँव के विकास के मुद्‌दों पर चर्चा करते हैं। कुछ लोग सामुदायिक खेल, मनोरंजन व लेखन अभ्यास आदि में व्यस्त रहते हैं। कुल मिलाकर सभी डिजिटल उपकरणों से दूर अपने-अपने स्तर पर व्यस्त रहते हैं और सृजनात्मक गतिविधियों में संलग्न रहते हैं।

इस अभियान की विशेषता यह भी है कि नियमों का पालन सामूहिक सहमति के आधार पर किया जाता है, जिसमें किसी तरह की जोर-

जबरदस्ती या दंडात्मक प्रक्रिया नहीं रहती। हालाँकि इसको लागू करने के लिए स्थानीय समितियाँ सक्रिय रहती हैं और इसके सकारात्मक परिणाम उत्साहवर्द्धक रहे हैं।

इसके परिणामस्वरूप बच्चों की पढ़ाई में आशातीत सुधार हुआ है। जो पहले मोबाइल व वीडियो में देर रात तक उलझे रहते थे, अब उनकी नींद व अध्ययन व्यवस्थित हो चले हैं।

विशेषज्ञों के अनुसार डिजिटल उपवास के साथ स्क्रीन थकान से निजात मिलती है, नींद में सुधार होता है और पारिवारिक संबंधों में सुधार आता है। विशेषज्ञों का मानना है कि ऐसी पहल तब सफल होती है, जब यह स्वैच्छिक हो और इसमें आपातकालीन आवश्यकताओं के लिए भी व्यवस्था हो। अत्यधिक कठोर नियम की जगह आवश्यकतानुसार लचीलापन श्रेयस्कर रहता है।

इस प्रयोग के साथ बच्चों की पढ़ाई व परीक्षाफल के परिणाम में उल्लेखनीय सुधार देखा गया है। पहले जहाँ बच्चे कम नींद की समस्या व पढ़ाई में मन न लगने जैसी समस्याओं के कारण पीड़ित रहते थे, अब उनके ध्यान में अधिक स्थिरता आई है और उनकी एकाग्रता एवं समझने की क्षमता में वृद्धि हुई है।

टीवी व वीडियो गेम्स से शोर-गुल की जगह अब ये घंटे एकांतिक अध्ययन में बीत रहे हैं और बच्चे स्कूल का होमवर्क समय पर करते हैं। इसके साथ पारिवारिक जीवन की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। पहले जहाँ शाम का समय टीवी धारावाहिकों, मोबाइल गेम्स व सोशल मीडिया में बीत जाता था और पूरा परिवार एक छत के नीचे रहते हुए भी अलग-अलग स्क्रीन में खोया रहता था—वहीं अब सायरन बजते ही परिवार का समय आता है, जिसमें माता-पिता अपने बच्चों से बातें करते हैं, बुजुर्ग छोटों को कहानियाँ सुनाते हैं, महिलाएँ सामूहिक रूप से घर-आँगन में बैठकर संवाद करती हैं। परिणाम यह है कि पारिवारिक कलह व तनाव की घटनाएँ कम हुई हैं और लोग भावनात्मक रूप से अधिक जुड़ाव अनुभव करते हैं।

निश्चित रूप से स्क्रीन टाइम कम होने से लोगों को शयन के लिए पर्याप्त समय मिल रहा है। और इसके कारण होने वाले मानसिक थकान व चिड़चिड़ेपन से वे हलका अनुभव कर रहे हैं। जब वे प्रातः उठते हैं तो तरोताजा अनुभव करते हैं और दिनभर अधिक ऊर्जा के साथ कार्य कर पाते हैं।

नास्ति मायासमं पापं नास्ति योगात्परं बलम्।
नास्ति ज्ञानात्परं बंधुः न अहंकारात्परः रिपुः॥

अर्थात माया के समान कोई पाप नहीं, योग के समान कोई बल नहीं, ज्ञान के समान कोई बंधु नहीं और अहंकार के समान कोई शत्रु नहीं।

इसके लाभ को देखते हुए कुछ परिवार तो साप्ताहिक डिजिटल फ्री-डे भी मना रहे हैं, जिसमें पूरा परिवार सप्ताह में पूरा दिन बिना सोशल मीडिया के बिताने लगा है।

वडगाँव का यह प्रयोग एक अनुकरणीय उदाहरण के रूप में सामने प्रस्तुत है, जो सामुदायिक सहयोग के साथ स्क्रीन लत की आदत को सुधारने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। यह जरूरी हो गया है कि डिजिटल व्यसन के कारण टूट-बिखर रहे सामुदायिक ताने-बाने को सँभालने व सुस्थिर करने में ऐसी पहल अपने-अपने स्तर पर सभी जगह की जाए। ❑

ब्रह्मानंद की अनुभूति



आचार्य शंकर का अद्वैत वेदांत दर्शन आत्मा और ब्रह्म को द्वैत नहीं अर्थात दो नहीं, बल्कि एक अर्थात अद्वैत मानता है। आचार्य शंकर आत्मा और ब्रह्म के ऐक्य को 'तत्त्वमसि' कहकर पुष्ट करते हैं। उपनिषद् के वाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ही ब्रह्म हूँ) से भी आत्मा और ब्रह्म के अभेद का ज्ञान होता है।

जब आत्मा शरीर, इंद्रिय, मन इत्यादि उपाधियों से सीमित होता है, तब वह जीव हो जाता है। इस प्रकार आत्मा एक है; जबकि जीव भिन्न-भिन्न शरीरों में अलग-अलग हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जीव अनेक हैं। जितने व्यक्ति-विशेष हैं, उतने ही जीव हैं।

जब आत्मा का प्रतिबिंब अविद्या में पड़ता है तब वह जीव हो जाता है। इस प्रकार जीव आत्मा का आभास मात्र है। जीव संसार के कर्मों में भाग लेता है, इसलिए उसे कर्त्ता कहा जाता है। वह विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है, इसलिए उसे ज्ञाता कहा जाता है। सुख-दुःख की अनुभूति भी जीव को ही होती है; क्योंकि जीव कर्म-फल विधान के अधीन है।

कर्म-फल नियम के अनुसार कर्मों का फल प्रत्येक जीव को भोगना पड़ता है। शुभ और अशुभ, अच्छे और बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप वह पुण्य और पाप का भागी होता है।

आचार्य शंकर ने आत्मा को मुक्त माना है, परंतु जीव बंधनग्रस्त है। हाँ, जीव अपने प्रयासों से मोक्ष को अपना सकता है। जीव को अमर माना गया है। शरीर के नष्ट हो जाने के बाद जीव आत्मा में लीन हो जाता है।

एक ही आत्मा विभिन्न जीवों के रूप में दिखाई देती है। जिस प्रकार एक ही आकाश उपाधि भेद के कारण घटाकाश इत्यादि में दीख पड़ता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा शरीर और मनस् की उपाधियों के कारण अनेक दीख पड़ती है। अब प्रश्न उठता है कि जब आत्मा भी अमर है और जीव को भी अमर माना गया है, तब आत्मा और जीव में अंतर क्या है?

आचार्य शंकर के अनुसार जीव आत्मा का वह रूप है, जो देह से युक्त है। जीव के तीन शरीर हैं— स्थूलशरीर, लिंगशरीर (सूक्ष्मशरीर) और कारणशरीर। जीव शरीर और प्राण का आधार स्वरूप है।

जब आत्मा का अज्ञान के वशीभूत होकर बुद्धि से संबंध होता है, तब आत्मा जीव का स्थान ग्रहण करती है। जब तक जीव में ज्ञान का उदय नहीं होगा, तब तक वह अपने को बुद्धि से भिन्न नहीं समझ सकता।

इसलिए आचार्य शंकर ने इस संबंध का नाश करने के लिए ज्ञान पर बल दिया है। आचार्य शंकर के अनुसार जीव न आत्मा से भिन्न है न आत्मा का अंश है न आत्मा का विकार है, बल्कि स्वतः आत्मा है।

यदि जीव को ब्रह्म या आत्मा से भिन्न मान लिया जाए, तब तो जीव का ब्रह्म से तादात्म्य अथवा ऐक्य हो ही नहीं सकता। क्यों? क्योंकि दो विभिन्न वस्तुओं की आपस में ऐक्यता अथवा तादात्म्यता नहीं हो सकती। अस्तु जीव और ब्रह्म के बीच जो आभासी भेद दीख पड़ता है, वह सत्य नहीं है।

आचार्य शंकर का 'तत्त्वमसि' कथन आत्मा और जीव की अभिन्नता को भी प्रमाणित करता

है। जीव और ब्रह्म के संबंध को स्पष्ट करने के लिए आचार्य शंकर ने कई उपमाओं का प्रयोग किया है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार अग्नि से निकली हुई विभिन्न चिनगारियाँ अग्नि से अभिन्न हैं, उसी प्रकार जीव ब्रह्म से अभिन्न है।

वे कहते हैं कि एक ही चंद्रमा का प्रतिबिंब जब जल की भिन्न-भिन्न सतहों पर पड़ता है, तब जल की स्वच्छता और मलिनता के अनुरूप चंद्रमा का प्रतिबिंब स्वच्छ और मलिन दीख पड़ता है तो जिस प्रकार एक ही चंद्रमा का प्रतिबिंब जल की विभिन्न सतहों अर्थात स्वच्छ और मलिन जल की सतहों पर स्वच्छ और मलिन चंद्रमा अर्थात भिन्न-भिन्न चंद्रमा के रूप में प्रतिबिंबित होता है, उसी प्रकार एक ही ब्रह्म का प्रतिबिंब अविद्यारूपी दर्पण पर पड़ने से वह अनेक अथवा भिन्न-भिन्न दीख पड़ता है।

जब ब्रह्म का माया से संबंध होता है, तब वह ईश्वर हो जाता है। जब ब्रह्म का अविद्या से संबंध होता है, तब वह जीव हो जाता है। इस प्रकार जीव और ईश्वर दोनों ब्रह्म के विवर्त हैं। जिस प्रकार आग की सभी चिनगारियों में ताप पाया जाता है, वैसे ही 'शुद्ध चैतन्य' जीव और ईश्वर दोनों में पाया जाता है। हाँ, इन समानताओं के अतिरिक्त जीव और ईश्वर में कुछ विभिन्नताएँ भी हैं।

ईश्वर मुक्त है; जबकि जीव बंधनग्रस्त है। ईश्वर अकर्त्ता है; जबकि जीव कर्त्ता है। ईश्वर उपासना का विषय है, जबकि जीव उपासक है। ईश्वर जीवों के कर्मों के अनुसार सुख-दुःख प्रदान करता है। वह कर्मफल दाता है। जीव कर्मों का फल भोगता है; क्योंकि वह कर्मफल नियम के अधीन है, परंतु ईश्वर कर्म-फल नियम से स्वतंत्र है। ईश्वर पाप-पुण्य से ऊपर है; क्योंकि वह पूर्ण है।

ईश्वर जीव का शासक है; जबकि जीव शासित है। जीव ईश्वर के अंशों की तरह है, यद्यपि ईश्वर निरावयव है। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और अविद्या से रहित है, शून्य है। जबकि जीव अविद्या के वशीभूत हो जाता है।

चूँकि ईश्वर अविद्या के वशीभूत नहीं है, इसलिए वह आनंदमय है। जीव अविद्या (अज्ञान) के वशीभूत होकर कर्त्ता बनता है, पाप-पुण्य में लिप्त होता, दुःख और सुख भोगता है, जबकि ईश्वर इन अनुभूतियों से परे है, अस्तु अविद्या (अज्ञान) से मुक्त होने पर ही जीव को अपने सत्-चित्-आनंद स्वरूप का बोध हो सकता है।

आत्मा स्वभावतः नित्य, शुद्ध, चैतन्य, मुक्त और अविनाशी है, परंतु अविद्या, अज्ञान के वशीभूत हो जाने पर वह स्वयं को शरीर, मन, बुद्धि से जोड़कर शरीर, मन, बुद्धि और इंद्रियों की अनुभूतियों को स्वयं की अनुभूतियाँ समझने लगती है। वह शरीर के सुख-दुःख को स्वयं का सुख-दुःख समझने लगती है।

यही तो बंधन है, जिससे बँधकर जीव सुख-दुःख और जीवन-मरण के चक्र में पड़ा हुआ दुःख पाता रहता है। जब तक जीव में विद्या (ज्ञान) का उदय नहीं होगा, तब तक वह संसार के दुःखों का सामना करता रहेगा। विद्या (ज्ञान) से अविद्या, अज्ञान का नाश होने के साथ-साथ ही जीव के पूर्वसंचित कर्मों का अंत हो जाता है और वह सभी प्रकार के दुःखों से छुटकारा पा जाता है।

ज्ञानरूपी अग्नि से उसके सारे पूर्वसंचित कर्म-संस्कार नष्ट हो जाते हैं, जिससे उसे ब्रह्म की सत्यता में अटल विश्वास हो जाता है। तब जीव को, साधक को 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात 'मैं ही ब्रह्म हूँ' की अनुभूति होती है। तब जीव और ब्रह्म का भेद हट जाता है। तब बंधन का अंत हो जाता है और जीव को मोक्ष अर्थात मुक्ति, आनंद की अनुभूति होती है।

मोक्ष की इस अवस्था में जीव ब्रह्म के साथ एकाकार हो ऐक्य और अद्वैत की अनुभूति पाता है। मोक्ष, मुक्ति, आनंद की इस अवस्था में जीवात्मा

का जगत् के प्रति जो दृष्टिकोण होता है, वह परिवर्तित हो जाता है।

मोक्ष, मुक्ति की अवस्था में जीव ब्रह्म से एकाकार हो जाता है। चूँकि ब्रह्म आनंदमय है इसलिए मोक्षावस्था भी आनंदमय होती है। मोक्ष का अर्थ शरीर का क्षय अथवा अंत नहीं है, बल्कि मोक्ष का अर्थ मोह का क्षय, आसक्ति का क्षय, अज्ञान का क्षय, बंधन का क्षय है।

मोक्ष आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है। शरीर तो प्रारब्ध कर्मों का फल है। जब तक इनका फल समाप्त नहीं हो जाता, तब तक शरीर विद्यमान रहता है। जिस प्रकार कुम्हार का चाक, कुम्हार के द्वारा घुमाना बंद कर देने के बाद भी कुछ समय तक चलता रहता है, उसी प्रकार मोक्ष प्राप्त कर लेने के बाद भी पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार शरीर कुछ काल तक जीवित रहता है। इसे ही जीवनमुक्ति कहा जाता है।

जीवनमुक्त व्यक्ति संसार में रहता है, पर संसार उसमें नहीं रहता। वह कर्म करके भी अकर्म करने वाला अर्थात अकर्त्ता होता है। इसका कारण है कि वह हर कर्म अनासक्त भाव से ही करता है। आसक्त भाव से किए गए कर्म से ही सुख-दुःख की प्राप्ति होती है, परंतु अनासक्त कर्म तो भुने हुए बीज की तरह है, जिससे कोई नया संस्कार उत्पन्न ही नहीं होता अर्थात साधक सुख-दुःख नहीं पाता और वह परम आनंद, ब्रह्मानंद में होता है।

यही है ब्रह्म की अनुभूति, अद्वैत की अनुभूति। अद्वैत की अनुभूति पाने हेतु साधक को साधन चतुष्टय का अभ्यास करना चाहिए। पहला साधन है नित्यानित्यवस्तु-विवेक अर्थात साधक को नित्य और अनित्य वस्तुओं में भेद करने का विवेक होना चाहिए।

'ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है'—यह निश्चय ही नित्यानित्य वस्तु-विवेक है। लौकिक और पारलौकिक सुख-भोग में वैराग्य होना, यही द्वितीय साधन है। अनित्य भोज्य पदार्थों में जो घृणा बुद्धि है, वही 'वैराग्य' है। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान—ये छह संपत्तियाँ ही तृतीय साधन हैं।

शम का अर्थ है—मन का संयम, दम का अर्थ है—इंद्रियों का नियंत्रण एवं उपरति—विक्षेपकारी कार्यों से विरत होने को कहा जाता है। चिंता और शोक से रहित होकर बिना कोई प्रतिकार किए सब प्रकार के कष्टों को सहन करना ही 'तितिक्षा' कहलाती है। शास्त्रज्ञान में निष्ठा होना ही 'श्रद्धा' है। अपनी बुद्धि को सब प्रकार से शुद्ध ब्रह्म में ही सदा स्थिर रखना—इसी को 'समाधान' कहते हैं।

चतुर्थ साधन है—'मुमुक्षता'। अहंकार से लेकर देहपर्यंत जितने अज्ञानकल्पित बंधन हैं, उनको अपने स्वरूप के ज्ञान द्वारा त्यागने की इच्छा ही मुमुक्षता है। उक्त साधन चतुष्टय से युक्त हो जाने पर साधक को किसी ऐसे गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिए, जिन्हें ब्रह्मज्ञान (ब्रह्म साक्षात्कार) की अनुभूति प्राप्त हो गई हो। गुरु के साथ साधक को श्रवण, मनन और निदिध्यासन की प्रणाली का सहारा लेना पड़ता है।

गुरु के उपदेशों को सुनने को 'श्रवण' कहा जाता है। उपदेशों पर तार्किक दृष्टि से विचार करने को 'मनन' कहा जाता है। सत्य पर निरंतर ध्यान रखना, सत्य-चित्त-आनंदस्वरूप ब्रह्म का निरंतर ध्यान करना ही 'निदिध्यासन' कहलाता है।

उपरोक्त साधनों के नित्य-निरंतर अभ्यास से अंततः साधक ब्रह्म का साक्षात्कार पाता है। जीव और ब्रह्म का भेद मिट जाता है। जीव ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाता है। फलस्वरूप वह जीव और ब्रह्म के ऐक्य की, अद्वैत की, ब्रह्मानंद की अनुभूति पाता है। ❑

सत्कर्मों की महिमा



तुंगभद्रा नदी के किनारे आत्मदेव नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी अत्यंत दुष्ट एवं कर्कश स्वभाव की थी, नाम था उसका धुंधुली। आत्मदेव संपन्न था, परंतु उसके कोई पुत्र न था। एक दिन इसी दुःख-से-दुःखी होकर वह आत्महत्या करने नदी के तट पर पहुँचा।

दैवी संयोग से एक सिद्ध संत वहाँ से गुजर रहे थे, वे आत्मदेव की मनोव्यथा ताड़ गए। सिद्धपुरुषों को भविष्य का ज्ञान होता है, वे आत्मदेव से बोले—"तेरे भाग्य में पुत्र-सुख नहीं है—नाहक चिंता मत कर। पुत्र हुआ तो मात्र दुःख का कारण बनेगा।" परंतु आत्मदेव न माना, उसने सिद्धपुरुष को सामने देख उनके चरण पकड़ लिए और उनसे आशीर्वाद की याचना करने लगा।

संत उसका अनुरोध ठुकरा न सके सो उन्होंने एक फल दिया और बोले—"इसे ले जाकर अपनी पत्नी को खिला देना, पुत्र की प्राप्ति होगी।" आत्मदेव ने खुशी-खुशी घर लौटकर वह फल पत्नी को दिया। पत्नी स्वभाव से ही कपटी थी। उसने वह फल गाय के खाने में डाल दिया और अपने लिए, अपनी बहन का पुत्र लेकर आ गई व उसे अपने पति को दिखा दिया।

पुत्र का नाम रखा—धुंधुकारी, जो आगे चलकर अत्यंत ही पापी, दुष्ट प्रवृत्ति का हुआ। उधर गाय के गर्भ में मनुष्यरूपी पुत्र का जन्म हुआ, जिसके कान गाय के समान थे—इसलिए वह गोकर्ण कहलाया। आत्मदेव को अब अपनी पत्नी की कुटिलता समझ में आई, परंतु अब तक बहुत देर हो चुकी थी।

धुंधुकारी अपनी पतित प्रवृत्ति के कारण परिवार का नाम डुबाता रहा; जबकि गोकर्ण की प्रसिद्धि एक दिव्य संत के रूप में हो गई। धुंधुकारी वेश्यागमन करता था और एक दिन वेश्याओं ने ही पैसों के लोभ में उसकी हत्या कर दी। अपने दुष्ट कर्मों के कारण, धुंधुकारी प्रेतयोनि को प्राप्त हुआ व एक दिन अपने भाई गोकर्ण के सम्मुख रोता हुआ प्रकट हुआ।

आपत्तियाँ आ रही हैं—अति निकट आ पहुँची हैं। वे एक निष्ठुर, किंतु सुयोग्य अध्यापक की तरह सामने उपस्थित हो रही हैं। यदि हम आलसी और उद्दंड विद्यार्थी साबित हुए, अपनी दुष्प्रवृत्तियों पर ही अड़े रहे तो बुरी तरह मिटना पड़ेगा।

—परमपूज्य गुरुदेव

गोकर्ण से उसकी यह दशा देखी न गई। उन्होंने उसकी सद्गति के लिए भागवत का पाठ किया व समीप में सात गाँठोंवाला बाँस बाँध दिया। कथा सात दिन चली—प्रत्येक दिन की कथा समाप्त होते ही, बाँस की एक गाँठ टूट जाती। सातवें दिन पूरा बाँस फोड़ते हुए धुंधुकारी दिव्य पुरुष के रूप में उपस्थित हुआ।

निर्मल मन से अपने कर्मों का प्रायश्चित करने के कारण, सत्संग करने के कारण व भाई की करुणा के कारण धुंधुकारी को मुक्ति मिली। सत्कर्मों की महिमा अपरंपार है। ❑

ब्रह्म ही गायत्री है





जो ब्रह्म निर्गुण है, निराकार है, निर्विकार है, अनादि है, अनंत है, अचिंत्य है, अनाम है, अरूप है, उसी ब्रह्म में यह स्फुरण हुआ कि **'एकोऽहं बहुस्याम्'**—अर्थात मैं अकेला हूँ, बहुत हो जाऊँ। ब्रह्म की स्फुरणा से उत्पन्न शक्ति का नाम ही गायत्री है। उसी शक्ति से यह सृष्टि उत्पन्न हुई।

ब्रह्म की स्फुरणा से आदिशक्ति का आविर्भाव हुआ। उस आदिशक्ति का नाम ही गायत्री है, अस्तु गायत्री कोई स्वतंत्र शक्ति अथवा नए देवी-देवता का नाम नहीं है।

गायत्री निर्गुण, निराकार, निर्विकार, अरूप, अनाम ब्रह्म, परब्रह्म का ही क्रिया भाग है, सक्रिय अथवा क्रियाशील भाग है, रूप है, नाम है और ब्रह्म की क्रियाशील चेतना शक्ति रूप होने के कारण ही गायत्री उपासनीय है और ब्रह्मप्राप्ति, ब्रह्म-साक्षात्कार, ब्रह्मदर्शन हेतु गायत्री-उपासना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसलिए युगों-युगों से गायत्री ऋषियों, मुनियों, संतों, योगियों की उपास्या और आराध्या रही हैं।

गायत्री-उपासना ब्रह्म-उपासना है। ब्रह्म और गायत्री में केवल शब्दों का अंतर है, तत्त्वतः दोनों एक ही हैं। जैसे बरफ और पिघले हुए बरफ के जल में रूप और नाम का अंतर है, पर तत्त्वतः बरफ और जल तो एक ही हैं; क्योंकि बरफ ही जल का रूप धारण कर लेता है और जल ही बरफ बन जाता है। इसलिए बृ. यो. याज्ञ. (2.66) का कथन है कि **भूर्भुवः स्वः** इन तीन महाव्याहृतियों, चौबीस अक्षरों वाली गायत्री निस्संदेह ओंकार (ब्रह्म) स्वरूप हैं। स्वयं ब्रह्म ही चौबीस अक्षरों के रूप में प्रकट गायत्री हैं।

इसलिए महर्षि विश्वामित्र कहते हैं कि

देवस्य सवितुर्यस्य धियो यो नः प्रचोदयात्।
भर्गो वरेण्यं तद्ब्रह्म धीमहीत्यथ उच्यते॥
सप्रभं सत्यमानंदं हृदये मण्डलेऽपि च।
ध्यायञ्जपेत्तदित्येतन्निष्कामो मुच्यतेऽचिरात्॥

अर्थात गायत्री मंत्र के रूप में हम उस दिव्य तेजस्वी ब्रह्म का ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करता है। प्रकाशसहित सत्यानंदस्वरूप ब्रह्म को हृदय में और सूर्यमंडल में ध्यान करता हुआ, निष्काम हो गायत्री मंत्र को यदि कोई जपे, तो वह अविलंब संसार के आवागमन से छूट जाता है।

शतपथ ब्राह्मण (8.5.3.7) में स्पष्ट कहा गया है—**ब्रह्म गायत्रीति-ब्रह्म वै गायत्री।**

अर्थात ब्रह्म गायत्री है और गायत्री ही ब्रह्म है। वहीं स्कंदपुराण, काशीखंड (4.9.58) में ब्रह्म और गायत्री की एकता, अभिन्नता, अभेदता को लेकर स्पष्ट उल्लेख है कि

गायत्र्यैव परो विष्णुर्गायत्र्यैव परः शिवः।
गायत्र्यैव परो ब्रह्मा गायत्र्यैव त्रयी ततः॥

अर्थात गायत्री ही दूसरी विष्णु हैं और शंकर जी दूसरे गायत्री ही हैं। ब्रह्मा जी भी गायत्री में परायण हैं; क्योंकि गायत्री तीनों देवों का स्वरूप हैं।

गीता (10.35) में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

गायत्री छन्दसामहम्॥

अर्थात छंदों में मैं गायत्री छंद हूँ। जैसे ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मंत्र में ब्रह्म के विषय में कहा गया है—

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

अर्थात अखिल ब्रह्मांड में जो कुछ भी जड़-चेतन स्वरूप जगत् है, यह समस्त ईश्वर से व्याप्त है। वैसे ही गायत्री के विषय में छांदोग्योपनिषद् (3.12.1) में कहा गया है—

गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच।

अर्थात यह अखिल विश्व ब्रह्मानंद जो कुछ भी है, वह समस्त गायत्रीमय है।

जीवन में शाश्वत सुख-शांति, सभी प्रकार के कष्टों व अभावों से मुक्ति, जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति व ब्रह्म साक्षात्कार हेतु सभी उपलब्ध साधनों में गायत्री-साधना, गायत्री-उपासना को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। गायत्री स्वरूप एवं गायत्री से प्रकाशित होने वाला ब्रह्म; गायत्री नाम से वर्णित है।

गायत्री प्रत्यक्ष अद्वैत ब्रह्म की बोधिका हैं। आत्मकल्याण व भौतिक सुख के लिए प्रणव, व्याहृति और गायत्री—इन तीनों से परब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। जो गायत्री को जान लेता है, वह ब्रह्म को जान लेता है और उसके लिए कुछ और जानना शेष ही नहीं रह जाता है। जो गायत्री को जान लेता है, वह त्रिलोकविजेता होता है।

देवी भागवत स्कंध—9/1/42 के अनुसार गायत्री मोक्ष देने वाली, ब्रह्मस्वरूप और ब्रह्मतेज से युक्त शक्ति और मंत्रों की अधिष्ठात्री हैं। गायत्री-साधना, गायत्री-उपासना हर दृष्टि से साधकों के लिए हितकारी और मंगलकारी है। जैसे देवता स्वर्ग में सदा आनंदित रहते हैं, वैसे ही गायत्री-उपासक, गायत्री-साधक भी भूलोक में आनंदित रह सकता है। वह गायत्री-उपासना से न सिर्फ सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त होता है, बल्कि जीवन-मरण के चक्र से भी मुक्त हो जाता है। वह ब्रह्म साक्षात्कार के द्वारा अपने आत्मस्वरूप को जानकर उसी में प्रतिष्ठित हो जाता है। ❑

भगवान राम और रावण के बीच युद्ध की तैयारियाँ जोर-शोर से चल रही थीं। विभीषण, रावण के द्वारा अपमानित होकर निकाले जा चुके थे और वे भगवान राम को यथोचित सहयोग कर रहे थे। उनके मन में प्रश्न उभरा कि रावण की सेना में तो एक से बढ़कर एक बलशाली योद्धा हैं, उसके पास असंख्य रथ हैं और भगवान राम तो बिना किसी रथ के हैं तो पैदल रहकर वे कैसे रावण को हरा पाएँगे। उनके प्रश्न पूछने पर भगवान मुस्कराए और बोले—

''बल विवेक यम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥

अर्थात धर्मयुद्ध योद्धाओं और लकड़ी के रथ से नहीं, बल्कि धर्म के रथ से जीता जाता है। धर्म का रथ—शौर्य और धैर्य दो पहियों पर चलता है, विवेक का बल, संयम और परोपकार उस रथ के घोड़े हैं और कृपा, क्षमा और समता उन घोड़ों को बाँधने वाली रस्सियाँ हैं। इस धर्मरूपी रथ पर जो सवार होता है, उसे कोई हरा नहीं सकता।''

यह सुनकर विभीषण श्रद्धा से भगवान राम के आगे अवनत हो गए।

मुक्ति का मार्ग



मानव जीवन परम मूल्यवान है। यह केवल शारीरिक उपभोग या भौतिक उपलब्धियों के लिए नहीं, बल्कि आत्मा की उन्नति और चेतना के विस्तार के लिए मिला है, किंतु सामान्यत: मनुष्य बाहरी आकर्षणों और असंख्य उलझनों में इस प्रकार फँस जाता है कि अपने वास्तविक उद्देश्य को भी भूल बैठता है। भौतिक साधन और सुख-सुविधाएँ क्षणिक संतोष तो देती हैं, परंतु आत्मा की गहरी प्यास को शांत नहीं कर पातीं। परिणामस्वरूप व्यक्ति भीतर से शून्य, असंतुलित और अशांत अनुभव करता है।

मनुष्य को बाँधने वाले बंधन प्राय: सूक्ष्म और अदृश्य होते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ईर्ष्या ही वे अदृश्य जंजीरें हैं, जो आत्मा को जकड़कर उसकी स्वतंत्रता छीन लेते हैं। यह साधारण दुर्गुण दिखने में मामूली प्रतीत होते हैं, परंतु धीरे-धीरे वे इतने गहरे पैठ जाते हैं कि उनका प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र में दिखाई देने लगता है।

कामना शरीर को निर्बल और मन को चंचल बना देती है। क्रोध विवेक को नष्ट कर देता है और संबंधों को तोड़ता है। लोभ कभी तृप्त नहीं होने देता और निरंतर असंतोष को जन्म देता है। मोह सत्य को ढक देता है और अहंकार आत्मा को मलिन बना देता है। ईर्ष्या तो ऐसी अग्नि है, जो भीतर-ही-भीतर मनुष्य को जलाती रहती है। जब तक इन बंधनों से मुक्ति नहीं मिलती, तब तक जीवन में वास्तविक शांति और स्वतंत्रता का अनुभव असंभव है।

इन बंधनों से छुटकारा पाने का मार्ग कोई बाहरी साधन या चमत्कारी उपाय नहीं है, बल्कि आत्मचिंतन, संयम और साधना की दीर्घ प्रक्रिया है। जब मनुष्य साहसपूर्वक अपने भीतर झाँकता है और अपनी कमजोरियों को पहचानता है, तभी परिवर्तन की शुरुआत होती है।

साधना का तात्पर्य केवल ध्यान या जप से नहीं है, बल्कि यह एक जीवनपद्धति है—जिसमें विचार, आचरण और व्यवहार की शुद्धि शामिल है। आत्मसंयम, सेवा और करुणा को जीवन में स्थान देना ही साधना है। ऋषियों ने जीवन को आत्मविकास की प्रयोगशाला माना है।

उनके अनुसार मनुष्य का प्रत्येक कार्य तभी सार्थक बनता है, जब उसमें साधना की भावना जुड़ी हो। गृहस्थ जीवन भी यदि सेवा और त्याग से ओत-प्रोत हो तो वह तपोभूमि का रूप ले लेता है। परिवार और समाज के कल्याण की भावना से प्रेरित जीवन ही वास्तव में आत्मोन्नति का पथ प्रशस्त करता है।

यह भी सत्य है कि आत्मिक विकास के लिए केवल सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन ही पर्याप्त नहीं, बल्कि दुर्वृत्तियों का दमन भी उतना ही आवश्यक है। जीवन के बाग को सुंदर बनाने के लिए केवल पौधा रोपण ही नहीं, बल्कि खरपतवार को उखाड़ना भी आवश्यक है।

यदि व्यक्ति अपनी कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर ले और साथ ही करुणा, सद्भाव, सहयोग और सेवा जैसे गुणों को जीवन में उतार ले तो उसका व्यक्तित्व पुष्प की तरह सुगंधित और दीपक की तरह आलोकित हो उठता है।

सच्चा सुख और शांति तभी मिलती है, जब मनुष्य भीतर से स्वतंत्र होता है। यह स्वतंत्रता किसी बाहरी व्यवस्था से नहीं, बल्कि अंत:करण की निर्मलता से प्राप्त होती है।

संयम और साधना का अभ्यास ही मनुष्य को इस योग्य बनाता है कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानकर दिव्यता का अनुभव कर सके। अत: मुक्ति का मार्ग किसी जटिल साधना में नहीं है, बल्कि एक सरल जीवनपद्धति में निहित है।

यह पद्धति त्याग, संयम, साधना और सेवा के निरंतर अभ्यास से बनती है। जब मनुष्य अपने भीतर की दुर्बलताओं पर विजय पाकर सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन करता है, तब उसका जीवन शांत और संतुलित होने के साथ ही दूसरों के लिए प्रेरणास्पद बन जाता है। यही मुक्ति का पथ है—एक ऐसा पथ, जो व्यक्ति को बंधनों से मुक्त कर सुख, शांति और स्वतंत्रता की ओर ले जाता है। ❑

आवश्यक सूचना

1. कोई भी संदेश (फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप) व्यक्तिगत न भेजें, न कोई धनराशि व्यक्तिगत भेजें। व्यक्तिगत संदेश एवं भेजी गई धनराशि पर कार्रवाई करना संभव न होगा। केवल संस्थागत फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप पर ही संदेश एवं राशि भेजें।
2. सभी पत्र व्यवहार, ई-मेल, व्हाट्सएप संदेश में अपना पूरा नाम, पता, पिनकोड, मेल आई.डी., मोबाइल नंबर, व्हाट्सएप नंबर का उल्लेख अवश्य करें, ताकि त्वरित कार्रवाई की जा सके।
3. अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि पर्याप्त दूरी पर हैं। अत: संदेश अलग-अलग पतों पर ही भेजें। संयुक्त संदेश, धनराशि भेजने से कार्रवाई में विलंब होता है।
4. राशि भेजने के पश्चात जमापर्ची के साथ पूरा संदेश भेजें, ताकि समायोजन हो सके।
5. अब रजिस्टर्ड सेवा डाक विभाग द्वारा बंद कर दी गई है। जब भी अखण्ड ज्योति न पहुँचे, तुरंत सूचित करें। दोबारा भिजवाने की व्यवस्था की जाएगी।

पता—अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा (उ.प्र.), 281 003
फोन—(0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449, मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039, व्हाट्सएप नं. 9927086290,
Email-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

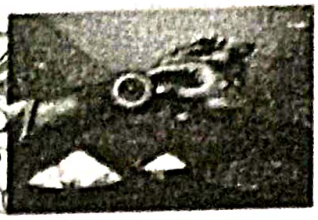
जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

पर्व विशेष-रक्षाबंधन पर्व

पवित्र बंधन का पर्व



श्रावणी का पावन पर्व भारतीय संस्कृति में केवल एक तिथि या परंपरा मात्र नहीं है, बल्कि यह आत्मीयता, संरक्षण, विश्वास और आध्यात्मिक चेतना का जीवंत प्रतीक है। यह पर्व मनुष्य के भीतर छिपी उन भावनाओं को जाग्रत करता है, जो उसे केवल भौतिक संबंधों तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि उसे एक उच्चतर नैतिक और आध्यात्मिक बंधन से जोड़ती हैं।

श्रावणी, जिसे प्राय: रक्षाबंधन के रूप में भी जाना जाता है, भाई-बहन के प्रेम का उत्सव होते हुए भी उससे कहीं अधिक व्यापक अर्थों को समेटे हुए है।

भारतीय परंपरा में प्रत्येक पर्व का एक गहन आध्यात्मिक आधार होता है। श्रावणी का यह पर्व भी हमें यह सिखाता है कि जीवन में बंधन केवल बाहरी नहीं होते, बल्कि वे आत्मा के स्तर पर भी स्थापित होते हैं।

यह बंधन कर्त्तव्य का है, यह बंधन विश्वास का है, यह बंधन संरक्षण का है और यह बंधन प्रेम का है। जब बहन अपने भाई की कलाई पर रक्षा-सूत्र बाँधती है, तो वह केवल एक धागा नहीं होता, बल्कि वह एक संकल्प होता है—एकदूसरे के प्रति समर्पण और सुरक्षा का संकल्प।

श्रावणी का यह पर्व श्रावण मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। श्रावण मास स्वयं ही अत्यंत पवित्र और आध्यात्मिक साधना का काल माना गया है। इस समय प्रकृति भी अपने सौंदर्य के चरम पर होती है। वर्षा की फुहारें, हरियाली की छटा और वातावरण की शीतलता मन को भीतर से शांत और पवित्र बनाती हैं।

ऐसे समय में मनुष्य का अंतर्मन भी अधिक संवेदनशील और आध्यात्मिक होता है। यही कारण है कि इस मास में अनेक व्रत, उपवास और साधनाएँ की जाती हैं।

श्रावणी का पर्व हमें यह भी सिखाता है कि सच्चा बंधन केवल रक्त संबंधों तक सीमित नहीं होता। भारतीय संस्कृति में रक्षा-सूत्र का महत्त्व इतना व्यापक है कि इसे गुरु-शिष्य, मित्र, समाज और राष्ट्र के स्तर पर भी देखा जाता है। यह धागा एक प्रतीक है—एक ऐसी भावना का, जो हमें एकदूसरे से जोड़ती है और हमें अपने कर्त्तव्यों का स्मरण कराती है।

पुराणों और इतिहास में भी श्रावणी के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कहा जाता है कि जब देवासुर संग्राम में इंद्र की स्थिति अत्यंत संकटपूर्ण हो गई थी, तब उनकी पत्नी इंद्राणी ने उनके हाथ में रक्षा-सूत्र बाँधा था, जिससे उन्हें विजय प्राप्त हुई। यह कथा हमें यह संदेश देती है कि श्रद्धा और विश्वास से बँधा हुआ यह सूत्र केवल एक धागा नहीं, बल्कि एक दिव्य शक्ति का माध्यम बन जाता है।

इसी प्रकार महाभारत में द्रौपदी द्वारा कृष्ण के हाथ में कपड़े का टुकड़ा बाँधने की कथा भी अत्यंत प्रसिद्ध है। जब कृष्ण की उँगली से रक्त बह रहा था, तब द्रौपदी ने अपने आँचल का एक भाग फाड़कर उनकी उँगली पर बाँध दिया। उस क्षण स्थापित हुआ यह बंधन इतना पवित्र था कि बाद में कृष्ण ने द्रौपदी की लाज की रक्षा कर इस बंधन को निभाया। यह प्रसंग हमें यह सिखाता है कि सच्चा संबंध वही होता है, जिसमें स्वार्थ नहीं, बल्कि समर्पण और करुणा होती है।

श्रावणी का यह पर्व केवल भाई-बहन के प्रेम का उत्सव नहीं है, बल्कि यह समाज में एकता और सद्भावना का संदेश भी देता है। आज के समय में जब मनुष्य अपने स्वार्थों में उलझकर संबंधों को भूलता जा रहा है, तब यह पर्व हमें पुन: यह स्मरण कराता है कि जीवन की सच्ची खुशी संबंधों की मधुरता में ही निहित है। यदि हमारे संबंध सुदृढ़ और पवित्र हैं, तो जीवन की कठिनाइयाँ भी सरल प्रतीत होती हैं।

इस पर्व का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष है—कर्त्तव्य का बोध। जब बहन रक्षा-सूत्र बाँधती है, तो वह भाई से यह अपेक्षा करती है कि वह उसकी रक्षा करेगा, परंतु इस रक्षा का अर्थ केवल बाहरी सुरक्षा तक सीमित नहीं है।

इसका अर्थ है—सम्मान की रक्षा, आत्मसम्मान की रक्षा और जीवन के हर संघर्ष में साथ देने का संकल्प। इसी प्रकार बहन भी भाई के प्रति अपने स्नेह, सहयोग और प्रेरणा का वचन देती है। इस प्रकार यह पर्व दोनों पक्षों के कर्त्तव्यों को संतुलित रूप में प्रस्तुत करता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाए तो यह रक्षा-सूत्र हमें अपने भीतर की नकारात्मक प्रवृत्तियों से भी रक्षा करने का संदेश देता है। यह हमें यह प्रेरणा देता है कि हम अपने मन, वचन और कर्म को शुद्ध रखें। जब हम इस धागे को बाँधते हैं, तो हमें यह संकल्प लेना चाहिए कि हम अपने जीवन में सत्य, अहिंसा, करुणा और प्रेम के मार्ग पर चलेंगे।

भारतीय संस्कृति में प्रत्येक अनुष्ठान का एक गूढ़ अर्थ होता है। श्रावणी के दिन स्नान, संकल्प, पूजा और रक्षा-सूत्र बाँधने की प्रक्रिया हमें यह सिखाती है कि जीवन में शुद्धता और अनुशासन का कितना महत्त्व है। ये केवल बाहरी क्रियाएँ नहीं हैं, बल्कि ये हमारे भीतर के भावों को जाग्रत करने का माध्यम हैं।

आज के आधुनिक युग में, जब भौतिकता ने हमारे जीवन को बहुत हद तक प्रभावित कर दिया है, तब ऐसे पर्वों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। यह हमें हमारी जड़ों से जोड़ते हैं, हमें हमारी संस्कृति का बोध कराते हैं और हमें यह सिखाते हैं कि जीवन केवल भौतिक उपलब्धियों का नाम नहीं है, बल्कि यह संबंधों, मूल्यों और आध्यात्मिकता का समन्वय है।

श्रावणी का यह पर्व हमें यह भी सिखाता है कि सच्चा बंधन वही है, जो हमें स्वतंत्रता भी देता है और सुरक्षा भी। यह बंधन हमें बाँधता नहीं,

---

दुष्कर्मों का फल हरेक को अवश्यंभावी मिलता है, इस तथ्य को भली भाँति हृदयंगम कर लेना चाहिए। किया हुआ कर्म किसी को नहीं छोड़ता। इसका न कभी क्षय होता है, न क्षमादान की कोई व्यवस्था है। किसी-न-किसी रूप में मनुष्य को इसे भुगतना ही पड़ता है। समय लग जाए, पर कर्मफल एक अकाट्य एवं सुनिश्चित सत्य है।

बल्कि हमें उन्नति की ओर प्रेरित करता है। यह हमें यह विश्वास देता है कि हम अकेले नहीं हैं—हमारे साथ हमारे अपने हैं, जो हर परिस्थिति में हमारा साथ देंगे।

यदि हम इस पर्व के गूढ़ संदेश को अपने जीवन में उतार लें, तो हमारा जीवन वास्तव में सार्थक हो सकता है। हमें यह समझना होगा कि रक्षा-सूत्र केवल एक दिन का अनुष्ठान नहीं है, बल्कि यह एक जीवन-दृष्टि है। यह हमें यह सिखाता है कि हमें अपने संबंधों को कैसे निभाना है, अपने कर्त्तव्यों को कैसे पूरा करना है और अपने जीवन को कैसे श्रेष्ठ बनाना है—श्रावणी का यह पावन पर्व हमें यह संदेश देता है। ❑

स्वाध्याय करें भी, कराएँ भी



मनुष्य का व्यक्तित्व, प्रतिभा और प्रगति उसके विचारों पर निर्भर करती है। विचार ही चरित्र का निर्माण करते हैं और वही जीवन की दिशा भी निर्धारित करते हैं। अच्छा, उच्च और सत्प्रेरक चिंतन मनुष्य को महान बनाता है; जबकि दुष्ट, विकृत और असंयमित विचार उसे अधोगति की ओर ले जाते हैं। स्वाध्याय का महत्त्व इसी दृष्टि से है कि यह हमें निरंतर उच्च विचारों से जोड़ता है।

श्रेष्ठ ग्रंथों का अध्ययन मन और मस्तिष्क में ऐसे बीज बो देता है, जो जीवन को महान और उद्देश्यपूर्ण बनाने में सहायक होते हैं। रामायण, गीता, उपनिषद्, महापुरुषों की जीवन कथाएँ—ये सब ज्ञान के अक्षय भंडार हैं।

इनके पठन से अंत:करण शुद्ध होता है। आत्मविश्वास बढ़ता है और जीवन के प्रति एक नई दृष्टि विकसित होती है। स्वाध्याय केवल पठन-पाठन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका वास्तविक उद्देश्य जीवन में उन आदर्शों को उतारना भी है। यदि केवल पढ़ा जाए और आचरण में न उतारा जाए तो उसका कोई लाभ नहीं।

जिस प्रकार भोजन करने पर ही शरीर को शक्ति मिलती है, केवल भोजन के बारे में सोचने से नहीं—उसी प्रकार केवल ग्रंथ पढ़ने से नहीं, बल्कि उनके अनुसार जीने से आत्मिक शक्ति प्राप्त होती है।

मनुष्य का कर्त्तव्य केवल स्वयं स्वाध्याय करना ही नहीं, अपितु दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करना है। जो लाभ स्वयं को मिले, उसका विस्तार परिवार और समाज तक करना चाहिए। यही सच्ची सेवा है।

स्वाध्याय से मनुष्य की बुद्धि प्रखर होती है, सोच में गहराई आती है, निर्णय-क्षमता दृढ़ होती है और जीवन की दिशा स्पष्ट होती है। इस प्रकार स्वाध्याय व्यक्ति को भीतर से सशक्त बनाता है और समाज में भी सत्प्रभाव उत्पन्न करता है।

अत: हम सबको चाहिए कि प्रतिदिन कुछ समय अवश्य निकालकर स्वाध्याय करें और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करें।

यही आत्मविकास और समाज विकास का सुलभ मार्ग है। ❑

पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा के यहाँ एक कुरूप व बेडौल पुत्र उत्पन्न हुआ। उसे देखकर सभी घरवाले खिन्न हो गए। बालक कुबेर जब बड़ा हुआ तो उसे अपनी यह उपेक्षा सहन नहीं हुई। उसने अपनी योग्यता बढ़ाने का निश्चय किया। वह कठोर तप द्वारा धनाधीश लोकपाल बनकर अलकापुरी में राज्य करने लगा। जो लोग पहले कुबेर का उपहास करते थे, उन्हें कुबेर के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा। रूप की अपेक्षा गुणों को महत्त्व दिया जाना चाहिए। अपने पुरुषार्थ से अपनी योग्यता का अभिवर्द्धन करना चाहिए।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना



श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन की लालसा लिए हजारों भक्त पुरी जाया करते थे। एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी को किसी भक्त ने बताया कि जगन्नाथ जी में तो साक्षात् भगवान ही विराजते हैं। श्रीजगन्नाथ जी के रूप में साक्षात् भगवान ही भक्तों को दर्शन देते हैं।

यह सुनकर तुलसीदास जी बहुत प्रसन्न हुए और भगवान का दर्शन पाने की लालसा से वे तुरंत श्री जगन्नाथपुरी धाम की ओर चल पड़े। उस समय यातायात के साधन नहीं होने से लोगों को पैदल चलकर ही श्रीजगन्नाथपुरी धाम की यात्रा पूरी करनी पड़ती थी। सो महीनों की कठिन और थका देने वाली यात्रा के उपरांत तुलसीदास जी पुरी धाम पहुँचे।

मंदिर में भक्तों की भारी भीड़ थी। आखिरकार लंबी प्रतीक्षा के बाद तुलसीदास जी बड़े प्रसन्न मन से मंदिर के अंदर प्रविष्ट हुए, पर वहाँ विराजमान श्रीजगन्नाथ जी का दर्शन करते ही उन्हें बड़ा धक्का-सा लगा और वे निराश हो गए एवं विचार किया कि यहाँ मंदिर में विराजमान हस्त-पादविहीन देव हमारे इष्टदेव राम नहीं हो सकते; क्योंकि हमारे इष्टदेव राम तो कमल के समान सुंदर नेत्र वाले और गगन के समान नीलवर्ण हैं और पूरे जगत् को सुख प्रदान करने वाले हैं, पर इस मंदिर में विराजमान देव तो हस्त-पादविहीन हैं।

वे विचार करने लगे कि यह बिना हाथ-पाँव वाले लकड़े का विग्रह मेरा इष्टदेव नहीं हो सकता; क्योंकि मेरे इष्ट के हाथ में तो धनुष-बाण है, उनका वक्षस्थल सिंह जैसा चौड़ा है, उनकी भुजाएँ भी लंबी हैं।

ऐसा विचार करते हुए तुलसीदास जी बड़े निराश मन से मंदिर के गर्भगृह से बाहर निकल कर मंदिर से कुछ दूर एक वृक्ष के तले बैठ गए और वहाँ बैठे-बैठे सोचने लगे कि इतनी दूर आना व्यर्थ हुआ। क्या गोलाकार नेत्रों वाले हस्त-पादविहीन देव मेरे आराध्यदेव राम हो सकते हैं? कदापि नहीं! एक ओर यात्रा की थकान और ऊपर से भूख-प्यास और उस पर भी आराध्यदेव राम का उस मंदिर में दर्शन न होना, यह तुलसीदास जी के लिए बहुत पीड़ादायक था।

रात्रि हो चुकी थी। मंदिर में देवदर्शन करने के पश्चात सभी तीर्थयात्री रात्रि विश्राम करने जा चुके थे। मंदिर परिसर और मंदिर के आस-पास रात्रि का सन्नाटा पसर चुका था, पर उस सन्नाटे में अपने आराध्यदेव भगवान राम का दर्शन नहीं पाने की पीड़ा लिए तुलसीदास अभी भी उस वृक्ष के तले बैठे थे। तभी अचानक वहाँ एक आहट-सी हुई।

वे ध्यान से सुनने लगे। आवाज आई—"अरे बाबा! यहाँ तुलसीदास कौन है? तुलसीदास कौन है?" यह सुनते ही तुलसीदास जी ने नजरें उठाईं तो देखा एक बालक हाथों में प्रसाद की थाली लिए, यहाँ तुलसीदास कौन है? कहता हुआ, पूछता हुआ, उनके पास आ पहुँचा है।

तुलसीदास उठते हुए बोलने लगे—"मैं ही हूँ तुलसीदास! कहो क्या बात है?" वहाँ दिव्य सौंदर्य से युक्त एक सुंदर बालक अपने हाथ में एक थाली लिए खड़ा था। उसने तुलसीदास से कहा—"आप यहाँ हैं। मैं बड़ी देर से आपको खोज रहा हूँ।"

बालक बोला—"श्रीजगन्नाथ जी ने आपके लिए यह प्रसाद भेजा है।" तुलसीदास बोले—"कृपया करके आप इसे वापस ले जाएँ।"

बालक ने कहा—"बड़े आश्चर्य की बात है। जगन्नाथ का भात पाने दूर-दूर से लोग यहाँ आते हैं। कितने भक्त तरसते हैं इस प्रसाद को पाने के लिए और आप हैं कि इसे अस्वीकार कर रहे हैं। ऐसा क्यों?"

तुलसीदास जी बोले—"मैं बिना अपने इष्ट राम को भोग लगाए कुछ ग्रहण नहीं करता। फिर यह जगन्नाथ का भोग लगा हुआ जूठा प्रसाद जिसे मैं अपने इष्ट को समर्पित न कर सकूँ, इसका भोग मैं अपने इष्टदेव राम को कैसे लगाऊँ?"

बालक ने मुस्कराते हुए कहा—"बाबा! यह प्रसाद आपके इष्ट ने ही तो आपके लिए भेजा है।" तुलसीदास बोले—"यह हस्त-पादविहीन देव हमारे इष्टदेव नहीं हो सकते।"

तब बालक ने कहा—"श्रीरामचरितमानस में तो अपने भगवान के इसी रूप का वर्णन करते हुए आपने स्वयं कहा है—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

"अर्थात वह ब्रह्म बिना पैर के चलता है, बिना कान के ही सुनता है, बिना हाथ के ही नाना प्रकार के काम करता है, बिना मुँह (जिह्वा) के ही सारे रसों का आनंद लेता है और बिना वाणी के बहुत योग्य वक्ता है।" उस बालक की ये बातें सुनते ही तुलसीदास जी के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी, उनके रोम-रोम पुलकित हो उठे। वे मौन हो गए। तभी वह बालक प्रसाद का थाल रखकर और यह कहकर अदृश्य हो गया कि मैं ही राम हूँ। मेरे मंदिर के चारों द्वारों पर हनुमान का पहरा है। विभीषण नित्य मेरे दर्शन को आता है। कल प्रातः तुम भी मंदिर में आकर अपने राम का दर्शन कर लेना।

तुलसीदास जी ने बड़े प्रेम से प्रसाद ग्रहण किया। प्रातः मंदिर में उन्हें जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा के स्थान पर श्रीराम, लक्ष्मण एवं जानकी के भव्य दर्शन हुए। भगवान ने भक्त की इच्छा पूरी कर दी। जिस स्थान पर तुलसीदास जी ने रात्रि व्यतीत की थी, वह स्थान 'तुलसी चौरा' नाम से विख्यात हुआ। वहाँ पर तुलसीदास जी की पीठ बड़छता मठ के नाम से आज भी प्रतिष्ठित है।

वस्तुतः ब्रह्म तो एक ही है और एक ब्रह्म भक्त की भावना, प्रेम के वशीभूत हो उसे विभिन्न रूपों में दर्शन देता है और भक्त अपने आराध्य, अपने इष्ट, अपने भगवान को पाकर आह्लादित, आनंदित और धन्य हो उठता है।

मुख्य बात तो भक्त का भगवान के प्रति विशुद्ध प्रेम होना ही है। विशुद्ध प्रेम हो तो भगवान को भक्त के जीवन में प्रकट होना ही पड़ता है। भक्त की जैसी भावना होती है उसे भगवान उसी रूप में दिखते हैं।

तभी तो कहा गया है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं।
कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती।
प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती॥

अर्थात उपरोक्त चौपाई में भगवान शिव कहते हैं कि मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान सब जगह समान रूप से व्यापक हैं।

प्रेम से वे प्रकट होते हैं। देश, काल, दिशा, विदिशा में बताओ, ऐसी जगह कहाँ है, जहाँ प्रभु न हों और जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति होती है, प्रभु वहाँ (भक्त के लिए) सदा उसी रीति से प्रकट होते हैं। ❑

अध्यात्म का मार्ग



सृष्टि के आरंभ से ही मनुष्य ने अपने जीवन को व्यवस्थित बनाने के लिए नियम और अनुशासन स्थापित किए। केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं, बल्कि मानसिक और सामाजिक संतुलन भी उसके लिए उतना ही आवश्यक रहा। इसी से सभ्यताओं का विकास हुआ। धर्म-दर्शन, साहित्य संगीत और विविध सांस्कृतिक परंपराएँ जन्मीं।

मनुष्य ने अनुभव किया कि केवल बाहरी साधन और भौतिक सुविधाएँ जीवन को पूर्ण नहीं बना सकतीं। जीवन तभी सार्थक होता है, जब वह आत्मा की शुद्धता और मन की निर्मलता से जुड़ा हो। आध्यात्मिकता का वास्तविक उद्देश्य यही है—मनुष्य के भीतर ऐसी चेतना जाग्रत करना, जो उसे न केवल स्वयं के लिए, बल्कि समग्र समाज और विश्व के लिए उपयोगी बनाए।

जब आत्मा जाग्रत होती है तो मनुष्य के भीतर करुणा, प्रेम और सहानुभूति का प्रवाह स्वत: उमड़ पड़ता है। यह भावनाएँ ही उसके जीवन को ऊँचाई देती हैं और उसे संकुचित स्वार्थ से ऊपर उठाकर महानता की ओर ले जाती हैं। आज का मनुष्य भौतिक प्रगति में जितना आगे बढ़ा है, उतना ही भीतर से खाली और बेचैन होता गया है।

सुविधाओं के बढ़ते साधन उसके दु:खों का अंत नहीं कर पाए। उलटे, जीवन और अधिक जटिल और अशांत बनता गया। इसका कारण यही है कि उसने आत्मा के स्वर को अनसुना कर दिया है। जिस क्षण मनुष्य भीतर झाँकता है, आत्मावलोकन करता है, वही क्षण उसके जीवन का सबसे बड़ा मोड़ बन जाता है।

सत्य यही है कि आत्मिक शांति के बिना सुख संभव नहीं। धन, वैभव, सत्ता और शक्ति क्षणिक हैं। वे शरीर को सुख पहुँचा सकते हैं, पर आत्मा को तृप्त नहीं कर सकते। आत्मा की संतुष्टि केवल संयम, सेवा और साधना से ही होती है।

यही कारण है कि संत-महात्माओं ने सदैव त्याग, तप और अनुशासन पर बल दिया। वे जानते थे कि मनुष्य की सबसे बड़ी विजय स्वयं पर विजय है।

धर्म और अध्यात्म का आशय पूजा-पाठ और कर्मकांड तक सीमित नहीं है। यह तो जीवन की हर गतिविधि में सत्य, ईमानदारी और करुणा को उतारने का नाम है। जब हम अपने आचरण में सत्यनिष्ठ होते हैं, जब हमारा हृदय दूसरों के दु:ख से करुणा से भर जाता है, तब ही सच्चे अर्थों में हम धर्म का पालन करते हैं।

आध्यात्मिकता केवल किसी विशेष वर्ग या साधकों के लिए नहीं है। यह तो हर मनुष्य का सहज अधिकार है। जो भी आत्मा की गहराई में उतरकर अपने जीवन को सुधारने का प्रयास करता है, वह धीरे-धीरे बाहरी मोह-माया से मुक्त होकर वास्तविक सुख का अनुभव करता है। उसका जीवन प्रकाश और प्रेरणा का स्रोत बन जाता है।

युगों से संत और ऋषि यही कहते आए हैं कि जीवन एक अवसर है—ईश्वर का दिया हुआ अमूल्य उपहार। इसे व्यर्थ न गँवाकर हमें श्रेष्ठ कर्मों और उत्तम विचारों से सार्थक बनाना चाहिए। आत्मिक साधना ही वह मार्ग है, जो मनुष्य को उसकी सीमाओं से ऊपर उठाकर अमरत्व की ओर ले जाती है।

आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि हम भौतिक प्रगति के साथ-साथ आत्मिक चेतना का भी विकास करें। विज्ञान और तकनीक हमें साधन दे सकते हैं, पर जीवन का उद्देश्य और दिशा केवल अध्यात्म ही दिखा सकता है। जब मनुष्य अपने भीतर के सत्य को पहचान लेता है, तब न केवल वह स्वयं शांत और प्रसन्न रहता है, बल्कि अपने आस-पास भी सुख-शांति और सद्भाव का वातावरण फैला देता है। अत: अध्यात्म का सार यही है कि मनुष्य अपने जीवन को संयम, सेवा और साधना से जोड़ ले। वही सच्चा जीवन है, जो केवल जीने का नाम नहीं, बल्कि जगत् को प्रकाश देने का माध्यम बने। यही वह मार्ग है, जिस पर चलकर मनुष्य अपनी सीमाओं से परे जाकर अमर आनंद और अनंत शक्ति का अनुभव करता है। ❑

एक व्यक्ति भगवान बुद्ध की सभा में पहुँचकर उनके साथ अभद्रता करने लगा। बहुत देर तक उसका दुर्व्यवहार जारी रहा। भगवान बुद्ध ने उसकी सारी अभद्रता को शांतिपूर्वक सुना और कुछ प्रत्युत्तर न दिया। वह व्यक्ति उनको अनेकों अनर्गल बातें कहकर घर वापस लौट गया। घर जाने पर उसको अपने किए पर पश्चात्ताप हुआ और उसने अगले दिन पुन: भगवान बुद्ध से मिलकर अपने दुर्व्यवहार हेतु क्षमा माँगने का निश्चय किया।

भगवान बुद्ध उस समय उद्बोधन दे रहे थे। वह उनके चरणों में गिरकर उनसे बोला—"भगवन्! मैंने कल आपको बहुत-सी बातें कहीं। उन बातों से आपका हृदय दु:खा होगा। आपने मुझे कल कुछ कहा भी नहीं। मैं क्षमा माँगने आया हूँ। आज आप मुझे जो चाहें, वो कह दें। मैं आपका अपराधी हूँ।"

भगवान बुद्ध बोले—"नहीं वत्स! जो कल तुमने कहा, वो तुम्हारे साथ ही वापस लौट गया; क्योंकि उसे मैंने अपने हृदय में कोई स्थान नहीं दिया। तुम केवल अपनी आत्मा के अपराधी हो, मेरे नहीं। कुकर्म हमारी आत्मा को कलुषित करते हैं और किसी को नहीं। केवल उसके परिष्कार को ही जीवन का ध्येय बनाओ।"

भगवान बुद्ध की बातें उस व्यक्ति के हृदय में गहरे उतर गईं और उसने सदा के लिए अपने जीवन की दिशा को बदल दिया।

व्यावहारिक अध्यात्म के प्राथमिक सोपान

परमपूज्य गुरुदेव ने प्रज्ञायोग के रूप में वैज्ञानिक अध्यात्म के व्यावहारिक स्वरूप का प्रतिपादन किया, जिसके तत्त्वदर्शन को समझते हुए हर व्यक्ति दैनिक जीवन में इसे अपना सकता है और अपने जीवन को सँवार सकता है।

संयम, स्वाध्याय, साधना और सेवा प्रज्ञायोग के चार आयाम हैं, जो आत्मबोध एवं तत्त्वबोध के साथ दैनिक जीवन का अंग बनते हैं। संयम को पूज्य गुरुदेव ने प्रमुखतया चार आयामों में बाँटा है, जो हैं—इंद्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम एवं विचार संयम; जिनके अंतर्गत समय, ऊर्जा एवं मनोयोग का संरक्षण व नियोजन करते हुए साधक बाह्य प्रगति के साथ आंतरिक शांति-संतुलन को सुनिश्चित करता है।

इंद्रिय संयम के अभाव में मन की चंचलता के संग व्यक्ति की ऊर्जा मनमाने आचरण में नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। समय संयम के अभाव में दिनचर्या अस्त-व्यस्त रहती है और दैनिक आधार पर निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पाती।

अर्थ असंयम एक विलासी एवं भोगप्रधान जीवनशैली का वरण है, जो क्रमिक रूप से व्यक्ति के क्षरण एवं विखंडन का ही कारण बनता है। विचार संयम के अभाव में व्यक्ति चिंता, अवसाद एवं तनाव के भँवर में फँसा रहता है। अत: गुरुदेव ने जीवन को सार्थक एवं सफल बनाने के लिए चार संयमों की बात करी।

इंद्रिय संयम, सबका आधार है। इसी के आधार पर मन की स्थिरता है और समय संयम प्रभावी होता है। इसके साथ 'सादा जीवन-उच्च विचार' के दर्शन का पालन करते हुए अर्थ संयम सधता है और संसाधनों का सुनियोजन बन पड़ता है।

विचार संयम सबसे सूक्ष्म आयाम है, जो पहले तीन संयम के पश्चात संभव एवं शक्य होता है और तीनों का आधार भी बनता है। विचार संयम का आधार रहता है—स्वाध्याय। स्वाध्याय के साथ व्यक्ति की विवेक-बुद्धि जाग्रत होती है तथा जीवन की समझ परिष्कृत होती है।

स्वाध्याय से ही साधना में स्पष्टता आती है, समझ बनती है, अन्यथा बिना समझ के अभाव में साधना एक अबूझ पहेली एवं बोझिल प्रक्रिया प्रतीत होती है। आश्चर्य नहीं कि स्वाध्याय के महत्त्व को न समझ पाने के कारण कितने सारे साधक इससे वंचित रहते हैं और गुरुदेव द्वारा निर्देशित आत्मबोध एवं तत्त्वबोध की साधना का सम्यक अभ्यास नहीं कर पाते, जो जीवन का मर्म बोध करवाने वाले उपक्रम रहते हैं।

आराधना का अर्थ है—लोकसेवा, जनहित, जनकल्याण, समाजसेवा।

—परमपूज्य गुरुदेव

स्वाध्याय के आधार पर ही ज्ञान के आलोक में जीवन का सम्यक मूल्यांकन संभव होता है और स्व-अनुशासित संयम-साधना के साथ गायत्री-उपासना में गहनता आती है, इसी के साथ सेवा-आराधना की ठोस आधार भूमि तैयार होती है, जो प्रदर्शन से अधिक जीवात्मा के आत्मविस्तार की सहज परिणति रहती है। ❑

ऋषि परिवारों का आविर्भाव



भगवान मनु व शतरूपा के दो पुत्र व तीन पुत्रियाँ हुए। पुत्रों के नाम प्रियव्रत व उत्तानपाद तथा पुत्रियों के नाम आकूति, देवहूति व प्रसूति रखे गए। देवहूति प्रारंभ से ही धर्मनिष्ठ स्वभाव की थीं। देवर्षि नारद ने उनके लक्षण देखकर उनके लिए ऋषि आत्मा को वर के रूप में चयन करने का सुझाव मनु-शतरूपा को दिया।

नारद ऋषि का सुझाव उन्हें जँचा तो वे देवहूति को लेकर कर्दम ऋषि के पास पहुँचे। कर्दम ऋषि घोर तपस्वी थे, उनका व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक था, परंतु वे प्रचंड तपस्वी का जीवन जीते थे; सो उन्होंने देवहूति की परीक्षा लेने की सोची। परीक्षा लेने के पीछे यह भाव था कि देवहूति राजवैभव में पली है, क्या वह एक ऋषि आश्रम में तितिक्षा भरा जीवन व्यतीत कर पाएगी ? परीक्षा लेने के उद्देश्य से उन्होंने तीन आसन रखे व उन पर मनु, शतरूपा व देवहूति को बैठने को कहा।

दो आसनों पर मनु व शतरूपा बैठ गए, पर देवहूति धर्मसंकट में पड़ गईं। उन्हें लगा कि पति के सम्मुख उच्च आसन पर बैठना उचित नहीं है और इनका दिया निर्देश ठुकराना भी उचित नहीं है। अतः वे एक हाथ आसन पर रखते हुए जमीन पर बैठ गईं, ताकि दोनों मर्यादाओं का उल्लंघन न हो। कर्दम ऋषि को अपने व्यक्तित्व के अनुरूप संस्कारित वधू मिल गई। इनके नौ पुत्रियाँ व एक पुत्र हुए।

नौ पुत्रियों में कला का विवाह मरीचि ऋषि के साथ, अनसूया का अत्रि ऋषि के साथ, अरुंधती का वसिष्ठ ऋषि के साथ, शांति का अथर्वा ऋषि के साथ, श्रद्धा का अंगिरा ऋषि के साथ, हविर्भू का पुलस्त्य ऋषि के साथ, क्रिया का कृतु ऋषि के साथ व ख्याति का भृगु ऋषि के साथ हुआ। कपिल मुनि तो महामुनि के रूप में प्रसिद्ध हुए।

इस प्रकार एक ही ऋषियुग्म ने भारतीय संस्कृति की सभी उल्लेखनीय ऋषि परंपराओं को जन्म दिया। ऐसा तभी संभव है, जब दो ऋषि आत्माएँ, उच्च उद्देश्य के लिए गृहस्थ को एक तपोवन बनाने के उद्देश्य से मिलें तब जन्म लेने वाली संततियाँ श्रेष्ठतम व्यक्तित्वों को धारण करने वाली होती हैं। ❑

टिमटिमाते दीपक को देख सूरज बोला—"पुत्र! अंधकार बड़ा शक्तिशाली है। तू अभी छोटा-सा ही है। उसे देख घबराएगा तो नहीं।"

दीपक बोला—"तात! निरंतर चलते रहने का व्रत आपने नहीं तोड़ा तो मैं ही उससे विमुख कैसे होऊँ ?" इसी तरह अकेला दीपक सघन अंधकार से लड़ता चला जाता है।

शिक्षा ही नहीं, विद्या भी



ज्ञान की दो धाराएँ हैं। ज्ञान की पहली धारा है शिक्षा और दूसरी धारा है विद्या। भारतीय दृष्टिकोण से 'शिक्षा' शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है जिसका अर्थ है सीखना एवं सिखाना। इस प्रकार शिक्षा का अर्थ सीखने एवं सिखाने की क्रिया-प्रक्रिया है। शिक्षा के अंतर्गत हम विविध विषयों का, वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

शिक्षा हमारे भौतिक जीवन की सुव्यवस्था के काम आती है, जिसके माध्यम से जानकारी बढ़ने से सोचने की परिधि बढ़ जाती है, लिखने और बोलने की भाषा परिष्कृत होती है, अर्थोपार्जन की क्षमता बढ़ती है, कला-कौशल विकसित होते हैं। इन आधारों पर व्यक्ति स्वावलंबी उपार्जन में सफल होता है। ऐसे अनेक लाभों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा का प्रचलन किया गया है।

शिक्षा ग्रहण करने पर सर्वत्र जोर दिया जाता है। सर्वत्र स्कूल, कॉलेज खुले हैं। यह उचित भी है। बौद्धिक विकास की दृष्टि से, भौतिक विकास की दृष्टि से, अर्थोपार्जन जैसी आवश्यकता पूरी करने की दृष्टि से, विविध विषयों व वस्तुओं की जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से—अतिआवश्यक शिक्षा का विकास होना ही चाहिए, उससे हर व्यक्ति को लाभान्वित होना ही चाहिए।

भौतिक जानकारियों से संबंधित शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता को हम जानते हैं, पर हम उसके दूसरे पक्ष को भूल जाते हैं, जिसके बिना हमारी ज्ञानवृद्धि सर्वथा अधूरी और अपंग बनी रहती है। ज्ञान की दूसरी धारा की आवश्यकता और उपयोगिता को समझना भी आवश्यक है।

ज्ञान की दूसरी धारा है—विद्या। विद्या को परिभाषित करते हुए शास्त्रकारों ने सूत्र रूप में कह दिया है कि **'सा विद्या या विमुक्तये'** अर्थात विद्या वह है, जो मुक्ति प्रदान करे, जिसके द्वारा हम रोग, शोक, द्वेष, पाप, दीनता, दासता, दुर्बलता, दुर्गुण, अज्ञान, अभाव, कुसंस्कार आदि की दासता से मुक्ति प्राप्त कर सकें। ऐसी विद्या का अर्जन करने वाले को ही विद्यार्थी कहते हैं।

विद्या से ही व्यक्ति के दृष्टिकोण का परिष्कार होता है। उसके चिंतन और भावोल्लास में उत्कृष्टता का निखार आता है। विद्या के बिना मनुष्य के अंतराल में छिपी हुई दिव्यता का विकास नहीं हो पाता। मनुष्य में अंतर्निहित दिव्यता का विकास जिस क्रम से होता है, उसी क्रम से उसकी आकांक्षाएँ, विचारधाराएँ और गतिविधियाँ उच्चस्तरीय बनते जाते हैं।

उसी अनुरूप गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से उसका स्तर ऊँचा उठता जाता है। उसके अंदर सत्य, प्रेम, करुणा, सेवा, संवेदना आदि दिव्य भाव एवं सद्गुण विकसित होने लगते हैं। उसके चिंतन, चरित्र, व्यवहार में मन, वचन, कर्म में ऐसी विशेषताएँ दीख पड़ती हैं, जिनके संपर्क में आने वाला हर मनुष्य प्रसन्नता अनुभव करता है, प्रकाश ग्रहण करता है।

वह कठिन परिस्थितियों में भी घबराता नहीं और ईमानदारी, जिम्मेदारी, समझदारी तथा

बहादुरीपूर्वक जीवन की सभी समस्याओं और संघर्षों से बाहर निकल आता है और सदैव प्रफुल्लित रहता है। यही है विद्या का चमत्कार, माहात्म्य और प्रतिफल।

इस तरह ज्ञान के दो अंग हैं—एक शिक्षा और दूसरा विद्या। शिक्षा वह है—जो विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है, जिसे पढ़कर लोग ग्रेजुएट, क्लर्क, डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, प्रोफेसर, अफसर आदि बनते हैं। यह जीवकोपार्जन एवं लोक-व्यवहार में निपुणता प्राप्त करने के लिए है।

यह आवश्यक भी है; क्योंकि इसके बिना सांसारिक जीवन, भौतिक जीवन में उन्नति, प्रगति, सफलता नहीं मिल सकती, पर व्यक्ति के व्यक्तित्व के संपूर्ण व समग्र विकास के लिए, शाश्वत सुख-शांति प्राप्त करने के लिए यह शिक्षा पर्याप्त नहीं। इसलिए शिक्षा के साथ-साथ विद्या का अर्जन भी आवश्यक है; क्योंकि तभी व्यक्ति के व्यक्तित्व का समग्र विकास संभव है।

जिस ज्ञान को प्राप्त कर मनुष्य श्रेष्ठ आदर्शों, आकांक्षाओं और मान्यताओं का निर्माण करता है, उसी ज्ञान को विद्या कहते हैं और उस ज्ञान को प्राप्त करने का माध्यम, योग, सूर्य ध्यान, गायत्री मंत्र जप, यज्ञ, स्वाध्याय, सत्संग, संयम, सेवा आदि हैं।

इस तरह यह स्पष्ट है कि अक्षर अभ्यास और उसके सहारे विश्व की सभी परिस्थितियों का ज्ञान शिक्षा कहलाता है। इतिहास, भूगोल, गणित, भौतिकशास्त्र, जंतुशास्त्र, रसायनशास्त्र, स्वास्थ्यविज्ञान, व्याकरण, भाषा, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि ये सब शिक्षा के विषय हैं। व्यक्ति समाज, राष्ट्र की भौतिक उन्नति के लिए ये उपयोगी हैं, आवश्यक हैं, पर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और संस्कृति के उत्थान के लिए विद्या का महत्त्व कहीं अधिक है। मैं कौन हूँ, मेरा प्रादुर्भाव क्यों हुआ है? शाश्वत सुख-शांति का मार्ग क्या है, दुःखों से मुक्ति का क्या उपाय है और जीवात्मा का अवतरण क्यों और कैसे होता है और जीवन का परम लक्ष्य और उद्देश्य क्या है?

ये ऐसे प्रश्न हैं, जो भौतिक शिक्षा, साधन और संपत्ति के होते हुए भी मनुष्य को आंतरिक सुख-संतोष नहीं दे पाते। अपनी शाश्वत और सनातन सत्ता का बोध हुए बिना मनुष्य जिस आनंद की प्राप्ति के लिए बार-बार शरीर धारण करता है, उसकी पूर्ति नहीं हो पाती। मनुष्य बार-बार जन्म लेता है, फिर भटकता है, फिर भूलता है और मृत्यु के मुख में चला जाता है और उसे मुक्ति नहीं मिलती।

विद्या के बिना मुक्ति संभव भी नहीं है, विद्या का स्वरूप है—विचारणा एवं भावना के स्तर को उच्चस्तरीय बनाने वाला ज्ञान, अनुभव एवं अभ्यास। विज्ञान, अर्थोपार्जन, शिल्प, कला आदि का अपना महत्त्व और कार्यक्षेत्र है। भौतिक प्रगति के लिए उन सबकी जरूरत है, पर यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि व्यक्तित्व का समग्र विकास किए बिना हम भौतिक सुख-साधनों से भी सुख नहीं प्राप्त कर सकते।

जिसे उद्देश्य के साथ जीवन जीना नहीं आया उसका सारा शिक्षा-लाभ अपंग है। भला ऐसी शिक्षा का क्या मतलब यदि किसी शिक्षित व्यक्ति द्वारा फेंका गया कचड़ा अगली सुबह कोई अनपढ़ व्यक्ति उठाता है? ऐसी शिक्षा का क्या मतलब, जब एक शिक्षित अधिकारी, नेता, लाखों-करोड़ों रुपये गबन कर समाज और राष्ट्र की हानि करता है और अशिक्षित होते हुए भी एक गरीब रिक्शावाला, अपने रिक्शे में किसी यात्री के लाखों रुपयों से भरे

बैग को दूसरे दिन उसके घर जाकर उसे सौंप देता है ?

भला ऐसी शिक्षा का क्या मतलब, जब एक शिक्षित व्यक्ति समाजहित और राष्ट्रहित के बजाय स्वहित को सर्वोपरि मानता हो ? ऐसी शिक्षा का क्या मतलब यदि एक शिक्षित व्यक्ति धन के लालच में आकर अपनी सत्यनिष्ठा, कर्त्तव्यनिष्ठा को भी गिरवीं रख देता है ?

ऐसे शिक्षित व्यक्ति से वह अशिक्षित, अनपढ़ व्यक्ति कहीं अधिक श्रेष्ठ है, जो हर स्थिति में सत्यनिष्ठ और कर्त्तव्यनिष्ठ बना रहता है एवं सफलता और धन पाने के लिए कभी भी अनुचित और अनैतिक तरीके नहीं अपनाता है।

महाभारत में भीम और दुर्योधन, दोनों ही बलशाली हैं, दोनों गदा-युद्ध में निपुण हैं, पर दुर्योधन अपने गदा कौशल का प्रयोग हस्तिनापुर को कमजोर करने के लिए करता है। वह अनैतिक तरीके से हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर आसीन होना चाहता है। क्यों ? क्योंकि दुर्योधन शिक्षित तो है, गदा कौशल में निपुण भी है, पर उसमें नैतिकता, आदर्शवादिता, आध्यात्मिकता नहीं है, इसलिए उसे अपने राष्ट्र, हस्तिनापुर के हित की जरा भी चिंता नहीं है।

वहीं भीम शिक्षित भी है, गदा कौशल में निपुण भी है और नैतिक भी है, आदर्शवादी भी है, आध्यात्मिक भी है; इसलिए वह अपने कौशल, अपने बल का इस्तेमाल अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए कर रहा है, अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए नहीं। हमारा शिक्षित होना ही पर्याप्त नहीं, हमारा नैतिक होना, आदर्शवादी होना, सुसंस्कारी होना, मानवीय मूल्यों, गुणों से युक्त होना भी आवश्यक है—तभी हमारी शिक्षा हमारे साथ-साथ हमारे समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी साबित हो सकेगी।

आज अनीति, अनाचार, बेईमानी, भ्रष्टाचार, संक्रामक रोगों की भाँति समाज में फैलते जा रहे हैं। क्या शिक्षित, क्या अशिक्षित, क्या अफसर, क्या मालिक, क्या मजदूर, क्या नेता, क्या अभिनेता— अधिकांश इस पतन-प्रवाह में बह रहे हैं। विकृत जीवनशैली के कारण व्यक्ति नानाविध शारीरिक-मानसिक व्याधियों से पीड़ित है। अनपढ़ और अशिक्षित की कौन कहे, पढ़े-लिखे शिक्षित लोग भी आत्महत्याएँ कर रहे हैं, अनैतिक आचरण अपना रहे हैं। परिणामस्वरूप परिवार में प्रेम, सहकार व सौहार्द की जगह कलह-क्लेश ने ले ली है।

समाज में हत्या, लूट, व्यभिचार व भ्रष्टाचार जैसी घटनाएँ नित्य घट रही हैं। राष्ट्रीय जीवन में शुचिता व पारदर्शिता का घोर अभाव हो चला है और इन सबके मूल में कारण एक ही है—लोगों की विकृत जीवनशैली और लोगों का दूषित चिंतन। कहने को तो महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षण संस्थानों से प्रतिवर्ष लाखों स्नातक, परास्नातक, अभियंता, अध्यापक, चिकित्सक, अभिनेता, नेता, अफसर आदि निकल रहे हैं, पर उनकी कार्यशैली, कर्मनिष्ठा व ईमानदारी पर हर दिन कुछ नए प्रश्न व संदेह खड़े होते हैं।

उनमें भाव-संवेदना, नैतिकता, ईमानदारी, जिम्मेदारी, समझदारी, बहादुरी जैसे मानवीय मूल्यों का सूखा देखा जा सकता है। शैक्षणिक कुशलता के कारण, वस्तुगत, विषयगत ज्ञान के कारण वे परीक्षाएँ पास कर महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन तो हो जाते हैं, पर नैतिक मूल्यों, मानवीय मूल्यों से शून्य होने के कारण वे भ्रष्ट आचरण अपनाते हैं और किसी भी कार्य को पूर्णता व कुशलता के साथ संपादित करने के बजाय कामचलाऊ काम करने की कर्म संस्कृति अपनाते हैं, जिससे व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र की भारी हानि होती है।

मात्र विषयगत जानकारी हमें प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता दिला सकती है, पर जीवन की परीक्षा में नहीं। जीवन की गुत्थियों, उलझनों, चुनौतियों को सुलझाने के लिए तो सम्यक जीवन-दृष्टि चाहिए, जो विद्या के माध्यम से ही संभव है। हम अपने जीवन में सत्य, प्रेम, करुणा, संवेदना, नैतिकता, सेवा आदि मानवीय मूल्यों को धारण कर ही एक आदर्श मनुष्य, एक कर्मठ, कर्मनिष्ठ, कर्त्तव्यपरायण, ईमानदार नागरिक, अधिकारी, सेवक, नेता, अभिनेता, कलाकार, उद्योगपति, वैज्ञानिक, चिकित्सक आदि बन सकते हैं।

तभी हम स्व-हित के साथ-साथ समाज-हित, राष्ट्र-हित व समष्टिगत-हित में सोच सकते हैं और अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं। आज शैक्षणिक संस्थानों में ज्ञान के दूसरे महत्त्वपूर्ण पक्ष, विद्या की उपेक्षा की जा रही है, उसे नजरअंदाज किया जा रहा है और वहाँ मैन मेकिंग पर नहीं 'मनी मेकिंग' पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है, जो अति चिंताजनक है।

परमपूज्य गुरुदेव का स्पष्ट मत था कि, 'शिक्षा वही सार्थक है, जो आजीविका-उपार्जन सिखाए, मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा कर सके व मानवीय दायित्वों का निर्वहन करना सिखाए। शिक्षा में विद्या का समावेश होने से ही शिक्षा पूर्ण होती है। इसलिए शिक्षा के साथ विद्या का सम्मिलन, समन्वय व समावेश होना ही चाहिए; क्योंकि ऐसी शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य बनाने में समर्थ होती है। वैयक्तिक चरित्रनिष्ठा, चिंतन की उत्कृष्टता और क्रियाकलाप में आदर्शवादिता का जो समावेश कर सके, ऐसी विद्या का बीजारोपण एवं अभिवर्द्धन इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है।'

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि शिक्षा और विद्या दोनों आवश्यक हैं, महत्त्वपूर्ण हैं। शिक्षा से ही मनुष्य का बौद्धिक विकास होता है और विद्या से मनुष्य का आत्मिक विकास होता है, अर्थात उसमें प्रेम, स्नेह, सौहार्द, दया, करुणा, परोपकार, आत्मबल, सत्य आदि दिव्य गुणों, मानवीय मूल्यों का विकास होता है।

जहाँ शिक्षा और विद्या दोनों का समावेश हो जाता है, वहीं स्वर्ग उत्पन्न हो जाता है। शिक्षा से सांसारिक, भौतिक सफलताएँ अवश्यंभावी हैं और विद्याभ्यास से आंतरिक गुणों का यथा—प्रेम, दया, करुणा, सत्य, संवेदना आदि का विकास असंदिग्ध रूप से होता है।

जहाँ ये दोनों बातें मिल जाती हैं, वहीं आनंद का निर्झर निस्सृत होने लगता है और जीवन स्वर्ग बन जाता है। ❑

आज मैं तुम्हें एक बड़ा संदेश देने खड़ा हुआ हूँ और वह यह कि तुम कभी अनीति एवं अविवेकयुक्त मान्यता या परंपरा को अपनाने की बौद्धिक पराधीनता को स्वीकार न करना। संभव है कि इस संघर्ष में तुम अकेले पड़ जाओ, तुम्हें साथ देने वाले लोग अपने हाथ सिकोड़ लें, पर तो भी तुम साहस न हारना। तुम्हारे दो हाथ, सौ हाथ के बराबर हैं, इन्हें तानकर के खड़े हो जाओगे तो बहुमत द्वारा समर्थित होते हुए भी कोई मूढ़ता तुम्हें झुकने के लिए विवश न कर सकेगी। जब तक तुम्हारी देह में प्राण शेष रहें, सत्य के समर्पण और विवेक के अनुमोदन का तुम्हारा स्वाभिमान न गले, यही अंत में तुम्हारे गौरव का आधार बनेगा।

—स्वामी विवेकानंद

सुखी जीवन का राज



आजकल के तनाव से भरे युग में कोई भी व्यक्ति रोजमर्रा की जिंदगी में अपमान, तिरस्कार और अभद्र व्यवहार से बचकर नहीं रह सकता; क्योंकि रोजमर्रा की जिंदगी में घर हो या बस का सफर, अक्सर अप्रिय बातों और कड़ुए बोलों का आदान-प्रदान हो ही जाता है। यह समस्या विशेष रूप से कामकाजी महिलाओं के सामने आती है, जो पुरानी अप्रिय बातों को अपने अंदर बाँधकर रख लेती हैं और उन बातों को याद करके अक्सर विचलित रहती हैं।

वे शायद यह जान नहीं पातीं कि किस प्रकार वे अपनी शांति खोकर उत्तेजना और बेचैनी द्वारा स्वयं अपने आप को हानि पहुँचा रही हैं। घावों को हमेशा हरा बनाए रखना तनावमुक्त और हँसी-खुशी से भरपूर जीवन का सबसे बड़ा दुश्मन है। इस प्रकार हम दैनिक जीवन की हर मामूली-सी खरोंच को खुजलाकर, सहलाकर नासूर बना लेते हैं।

महान दार्शनिक कन्फ्यूशियस ने कितना सही कहा था कि किसी के द्वारा धोखा दिया जाना, ठगा जाना, अपमानित होना उतना पीड़ादायक नहीं होता, जितना उस घटना को मन में बराबर याद करते रहना। मनोविज्ञान का नियम है कि आदमी जैसा व्यवहार स्वयं से करता है, वैसा ही दूसरों से भी करता है। हमने स्वयं देखा होगा कि जो खुद की क्षमताओं और अच्छाइयों पर संदेह करता है, वह दूसरे लोगों को भी संदेह की दृष्टि से देखता है।

जो स्वयं से घृणा करता है और इस वजह से आत्मग्लानि का शिकार है, वह दूसरों से भी घृणा करता है। जो आदमी स्वयं को स्वीकारता है, प्रेम करता है और सम्मान देता है, वह दूसरों के लिए भी प्रेमपूर्ण भावों से आपूरित रहता है।

इसके विपरीत जो व्यक्ति दूसरों की बुराइयों पर ही नजर रखता है और उनके द्वारा पहुँचाई गई चोटों को कभी नहीं भूलता, वह स्वयं को भी अपनी गलतियों के लिए कभी क्षमा नहीं कर पाता। ऐसे लोग परनिंदा तो करते ही हैं, चुपचाप और अकेले बैठकर स्वयं को भी धिक्कारते हैं।

यदि कोई हमको अप्रिय बोल बोलता है तो उस पर नाराज होने से पहले यह अवश्य सोचना चाहिए कि वह व्यक्ति ऐसा झगड़ालू क्यों है? शायद उसके परिवार से उसे ऐसे ही संस्कार मिले हों। हो सकता है बचपन में उसे तिरस्कार और दुर्व्यवहार मिला हो।

संभवतः किशोरावस्था में उसे समाज की ज्यादती और साथियों की निर्दयता भुगतनी पड़ी हो अथवा उस समय वह गुस्से में हो या उसको किसी ने हमारे विरुद्ध भड़का दिया हो। हम इन बातों पर विचार करने के बाद इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि उसकी जगह हम होते तो हम भी वैसा ही व्यवहार कर बैठते। तब शायद हमारा गुस्सा सहानुभूति में बदल जाए।

अपमानित होकर भी अगर हम उसके साथ सहानुभूति का व्यवहार करें तो वह खुद पछतावे से भर उठेगा। वैसे तो माफ कर देने या माफी माँग लेने से पहले यह जरूरी है कि हम नफरत से मुक्त हो जाएँ, मगर शाब्दिक क्षमा-याचना भी क्रोध के ज्वर को ठंढा कर देती है।

दैनिक घटनाओं को जीवन का अंग मानकर ही चलना चाहिए तथा इनसे पैदा होने वाले क्रोध और खीझ को अपने मन पर हावी नहीं होने देना चाहिए।

ऐसे व्यक्तियों और घटनाओं को भूलकर ही हम सुखी जीवन बिता सकते हैं और यही सुखी जीवन का राज है, जिसे हम औरों में बाँटकर उन्हें भी सुखी बना सकते हैं। हमें धैर्यपूर्वक विषम परिस्थितियों का सामना करना चाहिए। अपनी मन:स्थिति में स्थिरता बनाए रखना चाहिए। इससे हमारी जीवन-ऊर्जा का क्षरण रुकेगा और हम सुखी एवं संतुष्ट जीवन जी सकेंगे। ❑

महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी संपत्ति दोनों पत्नियों में बाँटकर वानप्रस्थ को उद्यत हुए। पहली पत्नी, कात्यायनी को सुख-सुविधा की कामना थी सो वह मिल जाने पर उसे संतोष हो गया। दूसरी पत्नी, मैत्रेयी को संपत्ति देख संतोष नहीं हुआ। उसने महर्षि से प्रश्न किया—"स्वामी! क्या ये सुख के साधन, मुझे जीवनमुक्ति करा सकते हैं?"

महर्षि बोले—"नहीं मैत्रेयी! सुख के साधन लौकिक तृप्ति के लिए हैं, आंतरिक तृप्ति में इनका योगदान नगण्य है।"

मैत्रेयी यह सुनकर बोली—"येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्।" जिससे मुझे अमृत तत्त्व की प्राप्ति न हो, वह मेरे लिए किस मूल्य का है।

महर्षि ने मैत्रेयी से प्रश्न किया—"फिर उन्हें किसकी कामना है?" तो वे बोलीं—"असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय।" हे प्रभो! मेरे अंतस् के अंधकार को नष्ट कर दें, मुझे प्रकाश के पथ की ओर ले चलें।

महर्षि याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी को साथ लेकर निकले और वह ब्रह्मज्ञान की अधिकारी बनीं। सांसारिक ऐश्वर्य के पीछे भागने के स्थान पर यदि हम आंतरिक तुष्टि को जीवन का आधार बनाएँ तो वही श्रेष्ठ होगा।

कृतज्ञता



जीवन में हम अकेले कुछ भी नहीं कर सकते। हमारी प्रगति, सुख और सुरक्षा अनेक लोगों और व्यवस्थाओं के सहयोग से ही संभव होती है। माता-पिता ने हमें जन्म दिया और पाला-पोसा, शिक्षकों ने ज्ञान दिया, समाज ने हमें अवसर दिए और देश ने हमें स्वतंत्र वातावरण प्रदान किया।

यदि इन सबका योगदान न होता तो शायद हम आज जो हैं, वह न होते। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि हम उनके प्रति आभार प्रकट करना सीखें। कृतज्ञता केवल एक शिष्टाचार नहीं, बल्कि यह अच्छे चरित्र का लक्षण है।

जो लोग उपकार को भूल जाते हैं, वे न केवल कृतघ्न कहलाते हैं, बल्कि धीरे-धीरे अपनी श्रेष्ठता भी खो देते हैं। कृतज्ञता का अर्थ केवल धन्यवाद देना नहीं है, बल्कि उपकार के स्मरण को हृदय में बनाए रखना और अवसर मिलने पर उसका प्रतिपादन करना भी है। यह भावना हमें विनम्र और सहृदय बनाती है।

प्रकृति, परिवार, मित्र, गुरु और समाज—सभी ने किसी-न-किसी रूप में हमें सँवारा है। हमें चाहिए कि हम उनके योगदान को याद रखें और अपनी जीवनशैली में आभार की भावना को स्थान दें। इससे जीवन में शांति, संतोष और प्रसन्नता बनी रहती है।

जो लोग कृतज्ञ रहते हैं, वे हर परिस्थिति में सकारात्मक सोचते हैं और अपने आस-पास भी खुशी का वातावरण बना देते हैं। इसलिए यह कहा गया है कि कृतज्ञता जीवन की सबसे बड़ी सजावट है। हम सब अपने जीवन में यह संकल्प लें कि उपकारों को कभी नहीं भूलेंगे और कृतज्ञता को अपना स्वभाव बनाएँगे।

यही सच्चा मानवीय धर्म है। ❑

एक जिज्ञासु ने एक महर्षि से प्रश्न किया—"संसार में जो इतने रोग-कष्ट दिखाई पड़ते हैं, उनका कारण क्या है?"

वे बोले—"व्यक्ति के पास जितने पाप एकत्रित हो जाते हैं, उसी के अनुरूप शारीरिक एवं मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। व्यक्तिगत पापों का फल मनुष्य भोगता है, पर सूक्ष्मगत पापों का फल संपूर्ण समाज को भुगतना पड़ता है। ये फल अतिवृष्टि, अनावृष्टि, युद्ध, भूकंप, महामारी के रूप में मिलते हैं। अतः मात्र व्यक्तिगत स्तर पर शुभ कर्मों को करना ही श्रेष्ठ नहीं है, वरन समस्त समाज को इस हेतु प्रेरित करना ही श्रेष्ठ पुरुषों का दायित्व होना चाहिए।"

जीवन में समायोजन



जीवन में सफलता के माने एकाकी व्यक्तिगत उपलब्धियों तक सीमित नहीं हैं। जीवन का दायरा बहुत व्यापक है, जिसमें पारिवारिक, सामाजिक एवं व्यावसायिक पक्ष भी समाहित हैं, जिनके उचित प्रबंधन के साथ ही व्यक्ति की समग्र सफलता तय होती है।

इस संदर्भ में दूरगामी सफलता के लिए महत्त्वपूर्ण कौशल है—समायोजन क्षमता, जिस पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

समायोजन का अभिप्राय है स्वयं को सामूहिक परिवेश में ढालना, परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को बदलना, जिससे उस परिवेश में बिना टकराव के जीवनयापन किया जा सके और अभीष्ट लक्ष्य की ओर निर्बाध रूप से अग्रसर हुआ जा सके। अत: समायोजन लचक, स्वीकृति, सामंजस्य एवं समस्या समाधान की प्रक्रिया है, एक साथ शांति-सौहार्द एवं तालमेल के साथ रहने व कार्य करने की क्षमता है।

किसी भी संबंध को लंबे समय तक चलाने के लिए, इसे अनुकूल बनाने की क्षमता का होना आवश्यक होता है। समायोजन के आधार पर ही व्यक्ति अपनी व साथी-सहचर की आवश्यकताओं के मध्य संतुलन बिठा पाता है, परिस्थितियों के अनुरूप ढलता है और व्यवहार में लचीलापन अपनाते हुए संघर्षपूर्ण परिस्थिति से बाहर निकलता है।

समायोजन में मुख्यत: तीन बातें आती हैं—

(1) सकारात्मक दृष्टिकोण,

(2) भावनात्मक बुद्धिमत्ता एवं

(3) वाक्-व्यवहार कौशल।

इन्हीं के आधार पर आपसी संबंधों का प्रभावी प्रबंधन सुनिश्चित होता है।

यदि दृष्टिकोण सकारात्मक है, तो व्यक्ति भावनात्मक रूप से स्थिर होगा व साथी-सहचर की कमियों व भिन्नता को सहज रूप से स्वीकार कर पाएगा।

व्यक्ति में भावनात्मक बुद्धिमत्ता है तो दूसरे पक्ष की भावनाओं को समझते हुए बेहतरीन तालमेल बिठाएगा और व्यवहार-कौशल के आधार पर आपसी मतभेदों को सुलझाते हुए वृहद लक्ष्य की ओर आगे बढ़ेगा।

समायोजन की आवश्यकता परिवार, विद्यालय-महाविद्यालय, कार्यालय या बाहर किसी अभियान में टीम का हिस्सा बनने पर समायोजन क्षमता ही बड़े प्रोजेक्ट या अभियान को मंजिल तक पहुँचाने में सहायक बनती है। यह आपसी भिन्नता, विचार-वैषम्य के बावजूद, बिना अपने मूल्यों से समझौता किए अपने सामूहिक लक्ष्य की प्राप्ति संभव बनाती है।

स्वस्थ रिश्तों को सुनिश्चित करने के लिए समायोजन क्षमता आवश्यक हो जाती है। परस्पर सहानुभूति, लचीलेपन और संवेदी संवाद को अपनाते हुए व्यक्ति आपसी संघर्षों से निपटता है, आत्मविस्तार करता है और रिश्तों को विश्वास एवं सम्मान के आधार पर सुदृढ़ करते हुए चुनौतियों का सृजनात्मक समाधान उपलब्ध करता है।

समायोजन के महत्त्व एवं लाभ—

(1) आपसी रिश्ते मधुर और मजबूत बनते हैं,

परस्पर सम्मान का भाव विकसित होता है और संबंध लंबे व टिकाऊ बनते हैं।

(2) आपसी टकराव व संघर्ष विराम की ओर बढ़ते हैं और समाधान को प्राप्त होते हैं तथा 'मैं नहीं हम' का भाव विकसित होता है।

(3) परिवेश से अनुकूलता होने पर प्रतिकूल परिस्थिति में भय एवं घबराहट की स्थिति नहीं रहती।

(4) माहौल खुशनुमा एवं सहयोगपूर्ण बनता है और सबका सहयोग एवं अपनापन मिलता है।

(5) बेहतर तालमेल वालों को परिवार व समाज में अधिक स्वीकृति मिलती है।

(6) मन शांत रहता है, लक्ष्य पर बेहतर केंद्रित हो पाता है तथा हम अधिक सफल होते हैं।

(7) कार्यक्षमता व कार्य उत्पादकता में वृद्धि होती है, जिससे पेशेवर व सामाजिक जीवन अधिक सफल बनता है।

(8) परस्पर बेहतरीन समायोजन से परिवार और समाज में भी अधिक सुख-समृद्धि एवं टिकाऊ शांति की स्थिति बनती है।

(9) जीवन में संतुष्टि का भाव उच्च रहता है और व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित होता है।

वस्तुतः समायोजन का स्वभाव एक तरह का संस्कार भी है, जिसकी सीख घर व स्कूल में मिलती है कि किस तरह से तालमेल एवं सामंजस्य के साथ रहा जाए और जीवन को बेहतरीन ढंग से जिया जा सके।

समायोजन में बाधक तत्त्व—(1) सबसे बड़ी बाधा अहंकार की आती है, जो सिर्फ स्वयं के बारे में सोचता है और सामने वाले के पक्ष को अनुभव नहीं कर पाता और न ही अपनी गलतियों को स्वीकार कर पाता है।

(2) व्यक्ति का स्वार्थी होना, सिर्फ अपने ही लाभ की सोचना, दूसरे की समस्या व आवश्यकता को नहीं समझना भी इस हेतु एक बड़ी बाधा है।

(3) वाणी-व्यवहार की लापरवाही, बिना सोचे-समझे कुछ भी बोल देना, जो क्रोध, आवेश-आवेग जैसे नकारात्मक एवं विनाशकारी व्यवहार में उलझाती है।

(4) बेईमानी, जो औचित्य को नजरअंदाज करती है।

(5) शक, संदेह एवं संशय, जो आपसी रिश्तों में दरार और तनाव एवं विग्रह का कारण बनते हैं।

(6) संवेदनहीनता, दूसरों की परेशानी को नहीं समझना, व्यापक जनहित को नजरअंदाज करना भी एक बड़ी बाधा है।

(7) नकारात्मक दृष्टिकोण जो किसी की बात का गलत ही अर्थ लगाता हो।

(8) अस्त-व्यस्त जीवनशैली—इससे भी समायोजन में कठिनाई आती है।

(9) आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि का अभाव-जिससे हम दूसरों की सही-सही स्थिति को नहीं समझ पाते और ईमानदार आत्मसमीक्षा के अभाव में दूसरों से ही सुधार की अपेक्षा करते हैं और अपने सुधार के प्रति उदासीन रहते हैं।

समायोजन के सूत्र—(1) दूसरों की मौलिकता का सम्मान करें। मित्र, सहचर या परिवारजन जो जैसे हैं, उन्हें वैसा ही स्वीकार करने का अभ्यास करें। उन्हें जबरन बदलने का प्रयास न करें।

(2) खुलकर संवाद करें, दूसरों को भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व अवसर दें। अच्छे श्रोता बनें, दूसरों की बातों को धैर्य व शांतिपूर्वक सुनें।

(3) वाणी संयम का अभ्यास करें, अपनी वाणी से किसी के हृदय को ठेस न पहुँचाएँ।

(4) स्वयं की भावनाओं पर नियंत्रण रखें और दूसरों की भावनाओं को समझने का प्रयास करें।

(5) व्यापक हित में आपसी मतभेदों को नजरअंदाज करना सीखें और अपने अहंकार या गर्व से ऊपर उठना सीखें।

(6) उदारता-सहिष्णुता के सद्गुण का अभ्यास करें व लचीले बनें। क्रोध को क्षमा, शांति व अच्छाई से जीतने का प्रयास करें।

(7) आपसी रोष, कटुता व मनमुटाव का कारण न बनें, बल्कि विग्रह की स्थिति में संतुलन खोजें और समाधान का हिस्सा बनें।

(8) आपसी तालमेल के बिंदु खोजें व इनके इर्द-गिर्द चर्चा, संवाद व व्यवहार करें।

(9) दूसरों से अनावश्यक अपेक्षा न रखें, उनकी मानवीय त्रुटियों को नजरअंदाज करना सीखें।

(10) आपसी विश्वास की डोर को मजबूत बनाए रखें, जिससे रिश्ते टिकाऊ बनते हैं।

(11) सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाएँ, जिससे कठिन परिस्थितियों में भी समाधान का प्रकाश अवश्य मिलता है।

(12) अनुशासित रहें। वाणी, व्यवहार, चिंतन एवं जीवनशैली का अनुशासन अप्रत्यक्ष रूप से समायोजन में सहायक सिद्ध होता है।

इन सूत्रों का सम्यक अनुपालन कर लेने से जीवन सफल व संतुष्ट बन पाता है। ❑

एक राजा को यह अभिमान था कि वो ही सर्वसमर्थ है। सारी प्रजा का पालन उसी के कारण होता है। एक संत उसके राज्य में आए तो राजा ने उनको भी अपना यही मिथ्याभिमान कह सुनाया। संत बोले—"राजन्! जब आप प्रत्येक प्राणी का पालन करते हैं तो यह बताइए कि आपके राज्य में कितने कीड़े-मकोड़े हैं?" राजा चुप हो गया।

संत ने कहा—"जब आपको ये ही नहीं पता तो उनके भोजन की व्यवस्था आप करते हैं या भगवान?" क्रोधित होकर राजा ने कहा—"यदि भगवान करते हैं तो मैं एक कीड़े को एक दिन के लिए डिब्बे में बंद कर देता हूँ, फिर देखता हूँ कि उसकी रक्षा कौन करते हैं?" राजा ने कीड़े को बंद कर दिया और एक दिन बाद खोला तो देखा कि कीड़ा बड़े प्रेम से चावल का एक टुकड़ा खा रहा है। वह चावल, राजा के मस्तक से डिब्बा बंद करते समय गिर गया था। यह देख उस अभिमानी राजा का मिथ्याभिमान नष्ट हो गया।

एकात्म मानवतावाद



बीसवीं सदी में भारत में तत्त्वदर्शी चिंतक, विचारक, लेखक और चेतना की पराकाष्ठा को छूने वाले अनेक महापुरुष हुए। इन महान विभूतियों ने विश्व, देश और समाज में व्याप्त स्थितियों पर मौलिक रूप से चिंतन कर ऐसे निष्कर्ष सामने रखे जो भारत को नई दिशा देने वाले थे। इनमें से कुछ महापुरुषों के विचार और चिंतन बहुप्रसिद्ध हो गए, तो कुछ के विचारों का उतना व्यापक प्रचार-प्रसार नहीं हो सका, जितना होना चाहिए था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ऐसे ही तत्त्वज्ञ महापुरुष हैं, जिनका दर्शन आज भी प्रासंगिक है।

आज उनके चिंतन के कुछ पहलुओं की चर्चा करना सर्वथा समीचीन होगा। वैसे तो पंडित दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन ने जीवन के प्राय: सभी पक्षों को छुआ है, लेकिन मानव के समग्र विकास और आर्थिक विषयों पर उनका चिंतन सर्वकालिक रूप से प्रासंगिक है।

उन्होंने एकात्म मानवतावाद का जो दर्शन सामने रखा वह भारतीय मनीषा के युगों-युगों के तत्त्वचिंतन का निचोड़ है। संक्षेप में 'सर्वत्र मूलभूत एकता का दर्शन' ही एकात्म मानवतावाद है। पंडित जी एक निष्काम कर्मयोगी थे, जिन्होंने राष्ट्र और समाज के प्रति पूरा जीवन समर्पित कर दिया।

पं. दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितंबर, 1917 को धनकिया (राजस्थान) में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री भगवती प्रसाद तथा माता जी का नाम श्रीमती रामप्यारी था। बचपन में ही माता-पिता का साया सिर से उठ जाने पर उनका लालन-पालन उनके मामा श्री राधारमण शुक्ल की देख-रेख में हुआ।

बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि तथा मेधा से संपन्न पं. उपाध्याय ने सीकर से मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और उनकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर सीकर महाराज ने उन्हें छात्रवृत्ति प्रदान की। उन्होंने पिलानी में बिड़ला कॉलेज से इंटर की परीक्षा में भी प्रथम स्थान प्राप्त किया। इस पर उन्हें श्री घनश्यामदास बिड़ला ने भी छात्रवृत्ति प्रदान की। पं. उपाध्याय ने कानपुर के सनातन धर्म कॉलेज से बी0ए0 में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया और सेंट जॉन्स कॉलेज आगरा में एम0ए0 की पढ़ाई की। उसके बाद उन्होंने प्रयाग में एल0टी0 प्रशिक्षण भी प्राप्त किया।

पंडित जी सन् 1937 में मकर संक्रमण उत्सव पर कानपुर में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से जुड़े। संघ की राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत, पंडित उपाध्याय ने घर-परिवार बसाने की जगह प्रचारक के जीवन में प्रवेश किया। वे प्रखर लेखक और पत्रकार भी थे। उन्होंने सन् 1947 में लखनऊ में राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना करके 'राष्ट्रधर्म' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया और उसके कुछ ही दिनों बाद उन्होंने साप्ताहिक 'पांचजन्य' शुरू किया।

उन दोनों पत्रों की लोकप्रियता से उत्साहित होकर उन्होंने दैनिक 'स्वदेश' भी शुरू किया। पं. उपाध्याय ने 20 सितंबर, 1951 को उत्तर प्रदेश जनसंघ की नींव रखी। इसके एक माह बाद ही डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में अखिल

भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई। दिसंबर, 1952 में डॉ. मुखर्जी ने पंडित जी को जनसंघ का महामंत्री बनाया।

उस वक्त डॉ. मुखर्जी ने यह प्रसिद्ध वाक्य कहा था—"पंडित दीनदयाल जैसे एक, दो व्यक्ति मुझे और उपलब्ध हो जाएँ तो मैं चुटकियों में देश की राजनीतिक तस्वीर बदल दूँ।" दिसंबर, 1967 में पं. उपाध्याय को अखिल भारतीय जनसंघ के कालीकट अधिवेशन के लिए अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया गया। उनकी मेहनत, संगठन क्षमता तथा बुद्धिमत्तापूर्ण नेतृत्व से जनसंघ अत्यधिक मजबूत हुआ। पंडित जी की 11 फरवरी 1968 को संदेहास्पद परिस्थिति में मृत्यु हो गई। मुगलसराय स्टेशन पर उनका मृत शरीर पाया गया।

पं. दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार भारत की मनीषा ने सृष्टि तथा जीवन को लेकर गहन मनन किया। इसका निष्कर्ष यह है कि संपूर्ण सृष्टि में एक आंतरिक एकता है। पंडित जी के चिंतन का केंद्रीय आधार यही बना। उनका कहना है कि सृष्टि का स्वरूप बाहर से कितना ही विविधतापूर्ण हो, लेकिन वह वस्तुतः एकात्मवादी है। उसके विविध रूप में परस्पर सहयोग, सामंजस्य एवं परिपूरकता का भाव मुख्य है। उनके अनुसार व्यक्ति और समाज में कोई विरोध नहीं है।

वे व्यक्ति की चार मूल आकांक्षाओं—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में कोई विरोध नहीं देखते थे। जहाँ वे व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को जरूरी मानते हैं, वहीं वे यह भी मानते हैं कि मात्र भौतिक आवश्यकता की संतुष्टि से व्यक्ति सुखी और आनंदित नहीं हो सकता। पंडित जी राष्ट्र के लिए 'चिति' राष्ट्र की आत्मा को आवश्यक मानते हैं।

उनके अनुसार यह चिति ही अपने को व्यक्त करने के लिए राष्ट्र और राष्ट्र के अंतर्गत अनेकानेक संस्थाओं का निर्माण करती है एवं इन संस्थाओं का विकास करती है। अतएव इन संस्थाओं में विरोध का तो कोई प्रश्न ही नहीं है, किंतु फिर भी उनमें विरोध और संघर्ष दीख पड़ता है। उसके कारण उनका नियमन करने वाले किसी प्राकृतिक नियम की उपेक्षा या उल्लंघन ही होता है।

हमारे ऋषियों एवं समाज विचारकों ने इस विकृति की भी चिंता की थी और उसके परिमार्जन के लिए धर्म की आवश्यकता प्रतिपादित की थी। पं. दीनदयाल उपाध्याय का अर्थ-चिंतन उच्च कोटि का तथा भारतीय संस्कृति तथा परिस्थितियों के अनुरूप था। इसका महात्मा गांधी के अर्थ चिंतन से अद्भुत तादात्म्य है। उनका मानना था कि किसी देश की अर्थव्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जो मानव की मानवता को समाप्त न करे। इससे उस पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए, बल्कि उसका विकास होना चाहिए।

लक्ष्य यह हो कि मनुष्य मानवत्व से ऊपर उठकर देवत्व की ओर बढ़ सके। भारतीय संस्कृति मनुष्य के पूर्ण विकास की पक्षधर है। अर्थव्यवस्था का लक्ष्य लोगों के भरण-पोषण, जीवन के विकास तथा राष्ट्र की धारणा के लिए उन भौतिक साधनों का उत्पादन होना चाहिए, जिनकी आवश्यकता होती है। प्रत्येक देश में इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि उत्पादन, उपभोग का अनुसरण करे अथवा उपभोग, उत्पादन का।

पश्चिम की सोच कहती है कि आदमी की इच्छा अनंत है और उनकी निरंतर पूर्ति होनी चाहिए। पहले इच्छा जन्म लेती है, फिर उसको पूरा करने के साधन जुटाए जाते हैं। आज की सोच में जो कुछ पैदा किया जा रहा है, उसके उपभोग की इच्छा

पैदा की जाती है। बाजार के लिए माल पैदा करने की जगह माल के लिए बाजार तैयार किया जाता है। पंडित जी के अनुसार यह मानव प्रकृति के अनुकूल नहीं है। इसी तरह पंडित उपाध्याय प्रकृति के संतुलित दोहन के पक्षधर थे।

वे प्रकृति का शोषण नहीं चाहते थे। उनके अनुसार प्राकृतिक संपदा सीमित है। यदि उत्पादन को असीमित बढ़ाया जाएगा तो प्राकृतिक साधन लंबे समय तक हमारा साथ नहीं देंगे। ऐसी स्थिति में हमारे हाथ मात्र पछतावा ही रहेगा।

प्रकृति की विभिन्न वस्तुओं के बीच एक तालमेल है। वर्तमान युग की अर्थव्यवस्था इस संतुलन को बिगाड़ रही है। हमें प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए, जितने की वह पूर्ति कर सके। पंडित जी के अनुसार मशीन मनुष्य की सहायक हो सकती है, प्रतिस्पर्धी नहीं। मशीन के उपयोग से यदि बेरोजगारी बढ़ती है तो उसका प्रयोग नहीं होना चाहिए। जैसे किसी कारखाने की पूर्ण उत्पादन क्षमता का उपयोग नहीं हो रहा है, तो यह घाटे का सौदा है। उसी तरह मनुष्य का बेकार रहना भी घाटे का सौदा है। पंडित जी के शब्दों में हमें 'कमाने वाला खाएगा' की जगह भारत की आर्थिक रचना करनी चाहिए। वे चाहते थे नया युग श्रम का युग हो। आज भी उनका दर्शन सामयिक एवं उपयोगी है। अपने देश में विकास के लिए उनके सूत्रों को क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। ❑

एक दिन महर्षि कण्व अपने शिष्य कौत्स के साथ वन-भ्रमण को निकले। मार्ग में महर्षि को आश्रम से संबंधित कुछ कार्य स्मरण हुआ तो उन्होंने कौत्स को वापस लौटने की आज्ञा दी।

रास्ते में कौत्स को एक भीषण दरद से पीड़ित सुंदर स्त्री दिखाई पड़ी, पर वे उसको अनदेखा कर आश्रम चले गए। कुछ समय पश्चात महर्षि कण्व भी उसी मार्ग से निकले तो उस स्त्री को पीड़ा से कराहते देख उसे अपने साथ आश्रम ले आए और उसके उपचार इत्यादि की व्यवस्था की।

उन्होंने कौत्स को बुलाकर पूछा—"वत्स! तुम्हें मार्ग में यह पीड़ित स्त्री मिली तो तुमने उसकी सहायता क्यों नहीं की?"

कौत्स ने उत्तर दिया—"गुरुवर! मुझे भय था कि कहीं मैं उसके सौंदर्य से विचलित होकर धर्मभ्रष्ट न हो जाऊँ।"

महर्षि बोले—"पुत्र! दूसरे की पीड़ा का निवारण करना ही सबसे बड़ा धर्म है और क्या सौंदर्य से भागने से तुम्हें उससे विरक्ति हो जाएगी, छिपा हुआ भाव कभी भी प्रकट हो सकता है। वासना-शमन का एकमात्र उपाय है कि वैसे ही वातावरण में रहकर आत्मनियंत्रण का अभ्यास करना। जैसे सूखे में तैरना नहीं सीखा जा सकता है, वैसे ही आत्मनियंत्रण का अभ्यास एकांत में नहीं हो सकता।"

एकाग्रता—सफलता का आधार



जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने का सबसे आवश्यक साधन है—एकाग्रता। चाहे व्यक्ति व्यापार में हो, शिक्षा में, राजनीति या प्रशासन में या फिर आध्यात्मिक साधना में—यदि उसकी शक्तियाँ बिखरी हुई हों तो प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं। सभी शास्त्र और अनुभव यही बताते हैं कि बिखरे हुए मन और उद्देश्यों से कभी श्रेष्ठ परिणाम नहीं मिलते।

जब तक मन एक बिंदु पर स्थिर न हो, तब तक लक्ष्य प्राप्त करना कठिन है। यही कारण है कि शास्त्रकारों ने 'एकाक्षि दृष्टि' और 'दीर्घ दृष्टि' जैसे उदाहरण देकर, एकाग्र चित्त की महिमा बताई है। लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मन, वाणी और कर्म—तीनों का केंद्रित होना आवश्यक है।

जैसे बाण तब ही निशाने पर लगता है, जब वह सीधा और पूरी शक्ति के साथ छोड़ा जाए, वैसे ही व्यक्ति की क्षमताएँ तभी फल देती हैं, जब वे पूरी एकाग्रता के साथ प्रयुक्त हों। एकाग्रता केवल बाहरी कर्म में ही नहीं, विचार में भी आवश्यक है।

विचार में स्थिरता आने पर ही निर्णय स्पष्ट होते हैं और कार्यों में दृढ़ता आती है। साधक के लिए यह और भी महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि साधना में मन का बिखरना, समय और ऊर्जा, दोनों का नाश करता है।

भारतीय चिंतन परंपरा में ध्यान, संयम, विनम्रता और सत्संग—इन चारों को मन स्थिर करने का प्रमुख साधन माना गया है। सतत अभ्यास से मनोबल दृढ़ होता है, लक्ष्य स्पष्ट होता है और जीवन का मार्ग सहज बनता है।

सफलता के लिए केवल प्रयत्न ही नहीं, बल्कि प्रयत्न की दिशा का स्पष्ट होना आवश्यक है। अनवरत अभ्यास, सही लक्ष्य और स्थिर मन—ये तीनों मिलकर एकाग्रता की शक्ति को जन्म देते हैं, जो अंततः विजय का मार्ग प्रशस्त करती है। ❑

महापुरुषों की लीलाएँ अद्भुत होती हैं। एक बार संत कबीर ने गुरु नानक को एक रुपये का सिक्का भेजा और गुरु नानक ने संत कबीर को चवन्नी भेजी। संत कबीर ने चवन्नी की हींग खरीदकर एक सेठ द्वारा दिए जा रहे भोज में बन रही दाल में छौंक के रूप में डलवा दी। उससे अनेकों लोग तृप्त हो गए। वहीं गुरु नानक ने संत कबीर द्वारा भेजे गए सिक्के की औषधियाँ खरीदकर उनका यज्ञ करवा दिया। सारे वातावरण में स्वास्थ्य व सात्त्विकता की सुवास फैल गई। प्राप्त समय व संपदा का सदुपयोग ही महापुरुषों को श्रेष्ठ बनाता है।

जीवन रेखा हैं नदियाँ



नदियाँ किसी भी देश की जीवन-रेखा कही जाती हैं, जिनकी वहाँ की सभ्यता, संस्कृति एवं आर्थिक विकास में निर्णायक भूमिका रहती है। क्षेत्र की जैव-विविधता का ये मुख्य आधार रहती हैं। आश्चर्य नहीं कि विश्व की सभी महत्त्वपूर्ण सभ्यताएँ किन्हीं नदियों के किनारे पनपीं और फली-फूलीं। प्रस्तुत है विश्व की सबसे लंबी नदियों का रोचक, रोमांचक एवं रहस्यमयी संसार, जो मानवीय विकास में इनके महत्त्वपूर्ण योगदान को दरसाता है।

नील नदी (6650 किलोमीटर) उत्तर-पूर्वी अफ्रीका में बहने वाली विश्व की सबसे लंबी नदी है, जो विक्टोरिया झील से निकलती है और पूर्वोत्तर अफ्रीका के युगांडा, सूडान और मिस्र सहित ग्यारह देशों को पार करती हुई अंततः भूमध्य सागर में गिरती है। यह नदी हजारों वर्षों से मानवीय सभ्यता का आधार रही है। प्राचीन मिश्र की सभ्यता इसी के तट पर फली-फूली और आज भी नील नदी मिश्र के लिए आवश्यक जल आपूर्ति करती हुई यहाँ की जीवन-रेखा बनी हुई है। जिसके कारण यह क्षेत्र रेगिस्तान होते हुए भी हरियाली के नए नखलिस्तान के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

अमेजन नदी (6400 किलोमीटर) विश्व की दूसरी सबसे लंबी नदी है, जो दक्षिण अमेरिका की एंडीज पर्वतमाला से निकली है और पेरू, कोलंबिया और ब्राजील से होकर बहती है और अटलांटिक में गिरती है, जो विश्व का सबसे बड़ा जल निकासी बेसिन है। जल की मात्रा की दृष्टि से यह विश्व की सबसे बड़ी नदी है और अमेजन वर्षा वनों की जीवन-रेखा है।

अमेजन नदी बेसिन विश्व की 40 प्रतिशत जैव-विविधता का घर है। इसकी औसतन चौड़ाई एक से 10 किलोमीटर है, जो वर्षा ऋतु में 50 किलोमीटर तक बढ़ जाती है और अपने चरम पर 190 किलोमीटर तक पाई गई है।

आश्चर्य नहीं कि अमेजन नदी को पार करने के लिए कोई पुल नहीं बना हुआ है। विदित हो कि नदी से 2 लाख क्यूबिक मीटर से अधिक जल प्रतिसेकेंड अटलांटिक सागर में गिरता है।

यांग्त्जी नदी (6300 किलोमीटर) एशिया की सबसे लंबी नदी है, जो पूरी तरह से चीन से होकर प्रवाहित होती है। इसका उद्गम तिब्बती पठार के हिमनद से होता है और यह चीन की एक-तिहाई आबादी का पोषण करती हुई शंघाई के निकट पूर्वी चीन सागर में जा गिरती है। इसके तट को चीन के सबसे उपजाऊ कृषि-क्षेत्रों में से एक माना जाता है। यह नदी चीन के इतिहास, संस्कृति एवं आर्थिक विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। यह उत्तरी और दक्षिणी चीन के बीच विभाजक रेखा के रूप में कार्य करती है।

यांग्त्जी नदी किंघई—तिब्बत पठार, युन्नान, सिचुआन, हुबेई, जियांग्सू और शंघाई से होकर बहती है। यह नदी चीन में पर्यटन का एक प्रमुख स्रोत है। विश्व का सबसे बड़ा जलविद्युत संयंत्र त्रिग्रौरजेस बाँध इसी नदी पर बना हुआ है।

मिसिसिपी—मिसौरी नदी प्रणाली (6275 किलोमीटर) उत्तरी अमेरिका की सबसे लंबी नदी

प्रणाली है। मिसौरी नदी रॉकी पर्वतमाला से निस्सृत होती है और मिसिसिपी नदी में मिलती है, जो फिर अमेरिका के मध्य भाग से होते हुए दक्षिण की ओर बहती है और अंत में मैक्सिको की खाड़ी में गिरती है।

मिसिसिपी नदी बेसिन संयुक्त राज्य अमेरिका के 40 प्रतिशत भाग को जल से सींचता है। आश्चर्य नहीं कि मिसिसिपी नदी घाटी देश के सबसे उपजाऊ कृषि-क्षेत्रों में से एक है। यह नदी सदियों से परिवहन का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण मार्ग रही है। इसका विस्तार लिए हुआ डेल्टा वन्य समृद्ध जैव-विविधता के लिए माना जाता है।

येनिसेई नदी (5539 किलोमीटर) मंगोलिया से साइबेरिया होती हुई आर्कटिक महासागर में गिरती है। यह आर्कटिक महासागर में गिरने वाली सबसे बड़ी नदी है। यह नदी साइबेरिया के पारिस्थितिकी तंत्र और अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह नदी विशाल जंगलों, बीहड़ एवं दुर्गम क्षेत्रों से होकर गुजरती है, जिससे यह विश्व की सबसे सुंदर नदी घाटियों में से एक बन जाती है। सड़कों की कमी के कारण यह एक महत्त्वपूर्ण परिवहन मार्ग भी है। सरदी के मौसम में इस नदी के किनारे रेंडियरों के विश्व के सबसे बड़े झुंड विचरण करते हुए देखे जा सकते हैं।

पीली नदी (5464 किलोमीटर) विश्व की सबसे लंबी नदियों में एक है। इसे प्राचीन चीन सभ्यता का उद्गमस्थल माना जाता है, जो चीनी सभ्यता के उत्थान और पतन की साक्षी रही है। इसे ह्वांग हेके नाम से भी जाना जाता है। पीली नदी उत्तरी चीन से होकर बहती है और लोएस पठार से साथ लेकर आने वाली पीली गाद के लिए प्रसिद्ध है, जो इसके जल को पीला रंग प्रदान करती है। यह नदी चीन की समृद्धि, सांस्कृतिक इतिहास एवं कृषि-विकास से अटूट रूप से जुड़ी रही है।

इस नदी को जहाँ चीनी सभ्यताओं का उद्गम स्थल कहा जाता है, वहीं यह विनाशकारी बाढ़ के लिए भी जिम्मेदार रही है। इस कारण पीली नदी को चीन का शोक भी कहा जाता है।

ओब-इरतिश नदी प्रणाली (5410 किलोमीटर) एशिया के सबसे बड़े जल-क्षेत्र की जल-निकासी करती है। इर्तिश नदी चीन की अल्ताई पर्वतमाला से निकलती है और कजाकिस्तान से बहते हुए पश्चिमी साइबेरिया में ओब नदी से मिलती है और अंत में आर्कटिक महासागर में गिरती है। इस जल-क्षेत्र में विश्व की कुछ सबसे बड़ी आर्द्रभूमियाँ स्थित हैं।

इस नदी का उपयोग मुख्य रूप से सिंचाई, पेयजल, जलविद्युत-ऊर्जा और मछली पकड़ने के लिए किया जाता है। साइबेरिया में हय नदी वर्ष के आधे समय जमी अवस्था में रहती है। ट्रांस साइबेरियनग्रेलवे मार्ग का सबसे प्रमुख शहर नावोसिबिर्स्क इसी नदी के तट पर स्थित है।

पराना नदी (4880 किलोमीटर) अमेजन के बाद दक्षिणी अमेरिका की सबसे लंबी नदी है, जो ब्राजील, पराग्वे और अर्जेंटीना से होकर बहती है। विश्व की सबसे बड़ी जलविद्युत परियोजना में यह एक इताइपु बाँध इस पर निर्मित है, जिसका क्षेत्रीय कृषि एवं ऊर्जा-उत्पादन में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

यह एक विशाल जल-क्षेत्र का भी हिस्सा है, जिसमें दक्षिण अमेरिका के प्रमुख शहर और कृषि क्षेत्र स्थित हैं। यह विश्व की सबसे चौड़ी नदी भी है, जो कहीं-कहीं 220 किलोमीटर तक चौड़ाई लिए हुए है। पराना नदी डेल्टा विश्व के सबसे महान पक्षी अवलोकन स्थलों में से एक है।

कांगो नदी (4700 किलोमीटर) मध्य अफ्रीका के मध्य से होकर बहती है और जल-प्रवाह की दृष्टि से अमेजन के बाद विश्व की दूसरे सबसे बड़ी नदी है। यह विश्व की सबसे गहरी नदी भी है, जिसकी गहराई 200 मीटर से अधिक है। यह वर्षावन और अफ्रीका के सुदूर क्षेत्रों से होकर बहती है और लाखों लोगों के लिए परिवहन का एक माध्यम है।

अपने विशाल जल-प्रवाह के कारण यह जलविद्युत ऊर्जा का भी एक स्रोत है। यह नदी भूमध्य रेखा को दो बार पार करती है और यह क्षेत्र के जंगली जानवरों के लिए जल का प्रमुख स्रोत रहती है। कांगो वर्षावन अमेजन के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा वर्षावन है।

अमूर नदी (4444 किलोमीटर) चीन, मंगोलिया और रूस से होकर बहती है और चीन तथा रूस के बीच एक प्राकृतिक सीमा बनाती है और ओखोत्स्क सागर में गिरती है। एशिया की अन्य नदियों के विपरीत अमूर नदी के बड़े हिस्से अभी भी प्राकृतिक रूप में हैं।

यह बिना बाँध वाली दुनिया की सबसे लंबी नदियों में से एक है, जो उत्तर-पूर्वी एशिया में नौकायन और जैव-विविधता का प्रमुख केंद्र है। यह नदी अद्वितीय पारिस्थितिकी तंत्रों का घर है, जिनमें अमूर बाघ और अमूर तेंदुए के आवास भी शामिल हैं।

वोल्गा (3530 किलोमीटर) यूरोप और रूस की सबसे लंबी और महत्त्वपूर्ण नदी है, जो वल्डाइ पहाड़ियों से निकलकर साढ़े तीन हजार किलोमीटर से अधिक की लंबी यात्रा करती हुई कैस्पियन सागर में गिरती है।

यह रूस का प्रमुख जलमार्ग और राष्ट्रीय नदी मानी जाती है। जो देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सरदियों में नदी का अधिकांश भाग लगभग तीन माह के लिए जम जाता है। यदि भारत की बात करें तो सिंधु (3180 किलोमीटर) और ब्रह्मपुत्र (2900 किलोमीटर) जैसी लंबी नदियाँ भारत से होकर गुजरती हैं, लेकिन भारत में बहने वाली सबसे लंबी नदी का श्रेय गंगा नदी को प्राप्त है; क्योंकि इसका सबसे बड़ा भाग भारत में प्रवाहित होता है।

ब्रह्मपुत्र और सिंधु नदियों का अधिकांश भाग भारत से बाहर बहता है। इस तरह गंगा (2525 किलोमीटर) भारत की सबसे लंबी नदी है, जिसका उद्गम गंगोत्तरी ग्लेशियर के मुहाने गोमुख से होता है और यह उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल से होते हुए बंगाल की खाड़ी में गिरती है। यह भारत की सबसे पवित्र और महत्त्वपूर्ण नदी मानी जाती है।

पशवोऽपि हि जीवन्ति केवलं आत्मोदरम्भराः।
किम् कायेन सुगुप्तेन बलिना किं महात्मना॥

—व्यास स्मृति, 4/25

केवल अपना पेट भरना और मौज करना पशु भी जानते हैं। ऐसे पेट और प्रजनन के लिए जिए जाने वाले पशु-जीवन की भला क्या सार्थकता है?

इस तरह नदियों का संसार स्वयं में बहुत रोचक एवं अद्भुत है। मालूम हो कि विश्व में लगभग 1,50,000 नदियाँ हैं, जिनमें से 165 को प्रमुख नदी माना जाता है। इनमें से भी 76 नदियाँ ही 1000 मील (1609 किलोमीटर) से अधिक लंबी हैं। सामान्य धारणा के अनुसार नदियाँ उत्तर से दक्षिण की ओर बहती हैं, लेकिन विश्व की दस सबसे प्रमुख नदियों में से चार उत्तर की ओर बहती हैं। ❑

जीवन दर्शन के चार सूत्र

मानवीय जीवन के उत्कर्ष और मानवता के कल्याण का अचूक विधान बनकर प्रकट हुआ यह युग निर्माण सत्संकल्प अत्यंत सरलता से जीवन-पथ का बोध कराता है। इसके अठारह सूत्रों में से प्रत्येक में जीवन दर्शन का एक नूतन आयाम प्रकट होता है। क्रमिक सोपानों की पिछली चर्चा में मनुष्य जीवन के समुचित एवं समग्र विकास की सुलभ प्रक्रियाओं के रूप में परमपूज्य गुरुदेव के विचार प्रस्तुत हुए हैं।

षष्ठ सूत्र में व्यक्ति के जीवन की परिधि को व्यष्टि से समष्टिगत जीवन की व्यापकता में कैसे लाया जा सकता है, इस तथ्य का अनावरण व मार्गदर्शन है। अब इस सप्तम सूत्र में पूज्य गुरुदेव ने अत्यंत सरल एवं सहज शब्दों में चार ऐसे मानदंडों को प्रस्तुत किया है, जिन्हें आधार बनाकर मानवीय जीवन के उन्नत एवं विकसित स्वरूप को परखा जा सके।

जीवन की गुणवत्ता और मूल्यांकन की दृष्टि से सत्संकल्प का यह सप्तम आयाम अत्यंत प्रेरक है। पूज्य गुरुदेव के शब्दों में यह सूत्ररूपी सातवाँ आयाम है—**'समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।'** मनुष्य जीवन के रूप में एक आदर्श व्यक्तित्व को परिभाषित करने के लिए जिन गुणों-क्षमताओं की आवश्यकता है, उनमें से चार गुण मुख्य आधार कहे जा सकते हैं।

इन चारों से मिलकर एक ऐसा जीवन दर्शन प्रकाशित होता है, जिसे व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व निर्माण के लिए अनिवार्य मानवीय आचरण व मानवता का आदर्श मॉडल कहा जा सके।

एक सकल और सार्थक जीवन के निर्माण में पूज्य गुरुदेव के बताए ये चार जीवन मंत्र अमोघ उपायों के रूप में समझे जा सकते हैं। व्यक्ति के जीवन में उसके द्वारा संपन्न किए जाने वाले प्रत्येक क्रियाकलापों की पूर्णता-सार्थकता के लिए जिन विशेषताओं-योग्यताओं का व्यक्तित्व में होना आवश्यक है, ये यही हैं—समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी।

चारों मिलकर समन्वित रूप से जीवन को समग्रता देते हैं व किए जाने वाले कार्यों को सार्थकता। समझदारी जीवन की दिशा और दशा की स्पष्टता प्रदान करती है, ईमानदारी जीवन की गुणवत्ता प्रामाणिकता का निर्धारण कर मूल्यवान बनाती है, जिम्मेदारी सही दिशा में सक्रियता, सुदृढ़ता और निरंतरता को बनाए रखती है तथा बहादुरी का गुण भीतर साहस-संकल्प का बल उत्पन्न कर जीवन-पथ की समस्त बाधाओं को दूर करने की सामर्थ्य तथा ध्येय प्राप्ति को सुनिश्चित बनाता है।

इस प्रकार इन चारों से मिलकर एक समग्र जीवन दर्शन स्वतः प्रकाशित हो उठता है। समझदारी इस जीवन दर्शन का पहला सोपान है। इसका तात्पर्य है जीवन के दृष्टिकोण में विवेकशीलता और दूरदर्शिता को समाहित करना। सामान्य जीवन में व्यक्ति अपने निहित स्वार्थ, इच्छाओं-आकांक्षाओं के वशीभूत तुरंत के हित एवं लाभ की बात सोचता है, परंतु उसके दूरगामी परिणामों की अनदेखी कर जाता है। कई बार का एक गलत कदम, एक गलत

निर्णय जीवन को दिशाहीन एवं निरर्थक बना देता है। ऐसे में आवश्यक है कि समझदारी और विवेकशीलता का साथ जीवन में हर पल बना रहे।

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर सुखद-खुशहाल जीवन एवं भविष्य की धारणा मौजूद होती है, परंतु दूरदर्शिता के अभाव में वह वर्तमान की छोटी-छोटी बातों में उलझकर इस धारणा को कभी पोषित नहीं कर पाता है। जीवन के बड़े और महान उद्देश्यों एवं उपलब्धियों के पीछे यही दूरदर्शिता की नीति कारगर सिद्ध होती है।

किसी बड़ी उपलब्धि को प्राप्त करने के लिए जब कदम बढ़ाया जाता है तो वर्तमान की स्थिति कष्टदायी हो सकती है, साथ अन्यों की नजर में नासमझी भी कही जा सकती है, परंतु इस यात्रा का अंतिम परिणाम अवश्य ही सुखदायी और आश्चर्य से भर देने वाला होता है। दूरदर्शिता के आधार पर वर्तमान का निर्णय लेना ही तो समझदारी है।

वर्तमान में मौज-मस्ती, साधन-संसाधन, फैशनपरस्ती और भविष्य में रोग, शोक, पीड़ा और पतन—यह तो समझदारी नहीं है। समझदारी यही है कि वर्तमान के हरेक कदम से सुखद एवं उज्ज्वल भविष्य का मार्ग निकट होता चले। जीवन-पथ पर भटकने, खोने, भ्रमित करने वाले अवसर बार-बार सामने आते रहते हैं। ऐसे में जीवन की गति, सुरक्षा और सही दिशा-निर्देशन का कार्य समझदारी रूपी यही व्यक्तित्व की आंतरिक क्षमता करती है।

इसके साथ ही जीवन-मार्ग पर अवसरों की भी कमी नहीं, परंतु उचित अवसर की पहचान बिना समझदारी और विवेकशीलता के संभव नहीं।

इसलिए पूज्य गुरुदेव ने समझदारी को मनुष्य जीवन की दिशा और दशा की निर्णायक क्षमता के रूप में प्रस्तुत किया है। ईमानदारी भी मनुष्य जीवन के आंतरिक व्यक्तित्व की एक विभूति है। यह विभूति जीवन को आंतरिक एवं बाह्य—दोनों रूपों में उन्नत, प्रामाणिक एवं बहुमूल्य बनाती है।

सत्य, न्याय, धर्म, कर्त्तव्य, नैतिकता आदि के आदर्शों को आचरण में उतार लेने पर ही ऐसी आंतरिक विभूति प्राप्त हो पाती है। दुनिया की दृष्टि में ईमानदार दिखना या बने रहना अलग बात है, परंतु वास्तविक सार्थकता तभी है, जब ईमानदारी चारित्रिक सद्गुण के रूप में व्यक्तित्व की आंतरिक विशेषता बनकर प्रतिष्ठित हो जाए।

ऐसा होने पर व्यक्ति के वचनों और कर्मों की साम्यता समाज में स्पष्ट परिलक्षित होती है। उसके प्रति विश्वास, सहयोग, प्रामाणिकता जैसे अनेक जीवनमूल्य स्वतः जीवंत हो उठते हैं।

जीवन की यह आंतरिक विशेषता यदि सभी के व्यक्तित्व में आ जाए तो मौजूदा समय की मानवजनित अधिकांश समस्याओं-संकटों-उलझनों का समाधान स्वतः ही होता नजर आएगा। व्यक्ति के स्वयं में ईमानदार नहीं रहने से ही जीवन के हर स्तर पर संघर्ष, समस्याएँ और पीड़ा मौजूद है। इतना भी यदि बन पड़े कि व्यक्ति स्वयं के आहार-विहार, सोच-विचार और आचरण-कर्त्तव्य के प्रति ईमानदारी अपना ले तो देखते-ही-देखते दुनिया का सारा परिदृश्य रूपांतरित हो सुखद, शांतिमय उज्ज्वल भविष्य की झलक प्रस्तुत करने लगेगा।

ईमानदार की पहचान यही है कि व्यक्ति जो कार्य करता है, वह पूरी लगन, तत्परता और कर्त्तव्य निष्ठा से करता है, जो कहता है वह सत्य और प्रामाणिकता की कसौटी पर खरा सिद्ध होता है।

किसी प्रकार का झूठ, छल, फरेब, चालाकी, भ्रम उसके आचरण-व्यवहार से प्रकट नहीं होता। उसका आंतरिक जीवन भी निश्छल, शांत और सहज होता है, जो भीतर है वही बाहर है, कोई

दोहरा व्यक्तित्व को ढोने की आवश्यकता नहीं रहती, परंतु अज्ञानता में व्यक्ति जब भीतर से कुछ होता है और बाहर कहता-करता कुछ और है तो वह सर्वप्रथम आत्म गरिमा और मानवीय गरिमा से तो पतित होता ही है, साथ ही अपने समाज संबंधी के बीच भी तिरस्कृत, अपमानित और मूल्यहीन बन जाता है। ऐसे दुर्भाग्यपूर्ण जीवन के संताप से व्यक्ति और समाज को मुक्त करने का एकमात्र उपाय यही ईमानदारीरूपी सद्गुण को धारण करना है।

जिम्मेदारी इस सूत्र का तीसरा चरण है। मनुष्य का संपूर्ण जीवन ही जिम्मेदारियों और कर्त्तव्यों का पर्याय है। पहली जिम्मेदारी उसके स्वयं के शरीर-स्वास्थ्य, जीवन के प्रति। दूसरी जिम्मेदारी घर-परिवार, समाज और कार्य के प्रति तथा तीसरी विश्वमानवता का अभिन्न अंग होने के कारण प्रकृति, पर्यावरण और जीव मात्र के लिए है।

यदि इतनी व्यापकता में जिम्मेदारी का बोध हो तो यह विशेषता व्यक्ति के जीवन को सुदृढ़ता, व्यापकता प्रदान कर उच्चतम स्तर पर पहुँचा देती है। जीवन के सभी क्षेत्रों में, सभी स्तरों पर महत्त्वपूर्ण कार्यों, उत्तरदायित्वों, उपलब्धियों तक पहुँचने और कार्य करने वाले जिम्मेदारी का निर्वहन करने वाले लोग ही होते हैं।

व्यक्ति को जीवन में कुछ भी करने में बाधाएँ, समस्याएँ स्वाभाविक रूप में आती हैं, परंतु फिर भी उस कार्य को कर गुजरने की, कर्त्तव्य मार्ग पर डटे रहने की शक्ति भीतर के जिम्मेदारी-बोध से ही आती है। गैर-जिम्मेदारी का रवैया अपनाना सरल है। कार्यों-कर्त्तव्यों का उत्तरदायित्व हमेशा दूसरों के सिर मढ़ने में गैर-जिम्मेदार जरा भी नहीं झिझकता।

चतुराई-चालाकी दिखाकर आसानी से दूसरों पर दोषारोपण करते हुए अपने हिस्से के उत्तरदायित्वों और अवसरों से भाग खड़ा होता है, परंतु व्यक्ति की यही गैर-जिम्मेदारी की आदतें उसके व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन को बेकाम, निकम्मा और निरर्थक बना डालती हैं।

व्यक्ति बातों-विचारों में निपुणता भले ही रखता हो अथवा क्षमता, योग्यता और संभावनाओं से भरपूर हो, परंतु जिम्मेदारी लेने पर ही इनकी सार्थकता को सिद्ध करने का अवसर प्राप्त होता है।

स्वयं के जीवन को विकसित, व्यापक और क्षमतावान बनाने का अनुपम सूत्र समान रूप से सभी के लिए वरेण्य है। एक बार यदि व्यक्ति के अंतर्भावों में जिम्मेदारी बोध का प्राकट्य हो जाए तो फिर उसका जीवन केवल स्वयं तक नहीं सीमित रह सकता। उसके जीवन से धर्म, संस्कृति, समाज और विश्वमानवता के सार्वभौमिक उत्तरदायित्व नैसर्गिक रूप से जुड़ जाते हैं।

संकीर्ण स्वार्थपरता से ऊपर उठकर लोक-मंगल के लिए सेवा, श्रम, त्याग, समर्पण, समय, सहयोग जैसे मानवीय मूल्यों को सार्थक वही कर पाता है, जिसको जिम्मेदारी का बोध प्रतिष्ठित होता है।

बहादुरी इस सातवें सत्संकल्प का अंतिम सोपान है। मनुष्य जीवन में कुसंस्कार, दुष्प्रवृत्तियाँ, बाधाएँ भीतर और बाहर—दोनों ओर होती हैं। जीवन का स्वरूप व्यक्तिगत हो अथवा सार्वजनिक, सभी स्तर पर अनेकों कठिनाइयाँ, उलझनें, समस्याएँ मौजूद दिखाई देती हैं।

इन सबके समक्ष निडरतापूर्वक डटे रहना, सामना करना और संकल्प बल को बनाए रखते हुए इन पर विजय प्राप्त करना ही बहादुरी है। डरकर हिम्मत हारना तो कमजोरी और कायरता ही कही जाती है। हिम्मत और साहस के बिना न

तो व्यक्ति स्वयं के जीवन को ऊँचा उठा पाता है और न ही लोक-मंगल के किसी प्रयोजन में योगदान कर पाता है।

व्यावहारिक जीवन में भी समाज में व्याप्त कुप्रचलनों, अंधविश्वासों, अत्याचारों, अवांछनीय तत्त्वों से लड़ने के लिए साहस ही काम आता है। आस-पास की ऐसी विसंगतियों से समझौता कर लेना या उन्हें सहते रहना ठीक नहीं कहा जा सकता। बुराइयों से लड़ने अथवा असहयोग या विरोध की नीति ही बहादुरी कहलाती है।

इसी प्रकार जीवन के आंतरिक पक्ष में भी कमियों-कमजोरियों का सामना करते हुए उन पर नियंत्रण प्राप्त करना तथा प्रत्येक परिस्थिति में आदर्शों, मूल्यों, श्रेष्ठ परंपराओं को जीवंत बनाए रखना बहादुरी ही है।

परमपूज्य गुरुदेव ने इन चार जीवन सूत्रों के माध्यम से सत्संकल्प के इस सोपान में एक नूतन जीवन दर्शन प्रकट किया है। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को व्रत की भाँति संकल्पित हो जीवनपर्यंत पालन करने का तात्पर्य है—समग्र जीवन की समुन्नति के मार्ग पर चलना। इस मार्ग पर बढ़ते हुए जीवन धीरे-धीरे उच्चता एवं श्रेष्ठता की स्थिति में पहुँचना सुनिश्चित ही है।

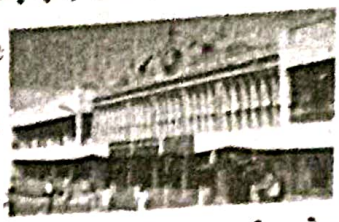
जिस प्रकार प्राचीन ऋषियों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के रूप में पुरुषार्थ चतुष्टय को संपूर्ण जीवन दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया है, कुछ उसी प्रकार पूज्य गुरुदेव ने नवसृजन के लिए उच्चतम, सुसंस्कृत एवं विकसित जीवन की अवधारणा को आधार बनाकर इक्कीसवीं सदी में यह नया जीवन दर्शन अपनी युग निर्माण प्रक्रिया में सम्मिलित किया है। इसमें व्यष्टि-समष्टि सभी के सर्वांगपूर्ण विकास और कल्याण के लिए आवश्यक तत्त्व मौजूद हैं। ❑

घटना सोलहवीं शताब्दी की है। फ्रांसीसी शहर तूलोन के पास स्थित एक टापू के प्रकाशगृह (लाइट हाउस) में कार्यरत कर्मचारी की हालत अचानक बिगड़ गई। रात का समय था, सो सभी के मन में प्रश्न उठा कि अँधेरे में वहाँ से गुजरते जहाजों को राह कौन दिखाएगा ?

कर्मचारी की पत्नी ने जाकर लैंप तो जला दिया, पर किसी को रातभर लैंप घुमाने का कार्य भी करना था। उसका पति मरणासन्न अवस्था में था। ऐसे में उसने अपने छोटे-छोटे दोनों बच्चों को रातभर लैंप घुमाने का कार्य दिया।

रातभर कार्य करके जब बच्चे घर पहुँचे तो उनके पिता की मृत्यु हो चुकी थी, किंतु दूसरों की सेवा हेतु अपने परिवार की स्थिति का ध्यान न रखते हुए अनेकों की जान बचाने वाली वो महिला व उसके बच्चे इतिहास में अमर हो गए।

मतिभ्रम एवं मनोभ्रम पर शोध



मनोचिकित्सा के क्षेत्र में सिजोफ्रेनिया एक गंभीर मानसिक विकार माना जाता है। इस विकार का संबंध मस्तिष्क के रासायनिक असंतुलन से है। इस समस्या से ग्रस्त रोगियों में कुछ प्रमुख लक्षण दिखाई देते हैं, जिसके आधार पर रोगी की पहचान और चिकित्सा उपायों को अपनाया जाता है। ये लक्षण हैं—मतिभ्रम अर्थात व्यक्ति को किसी के आस-पास होने, बातें करने, फुसफुसाने की आवाजें आती हैं। दूसरा लक्षण मनोभ्रम का है, जिसमें रोगी अजीब तरह के विश्वासों का शिकार हो जाता है, तथा कुछ और लक्षण उसकी अव्यवस्थित सोच को दरसाते हैं।

विचारकों के अनुसार यह रोग प्राय: 15 से 35 वर्ष अर्थात किशोरावस्था से वयस्कावस्था की अवधि में प्रारंभ होता है। इसके होने का कारण मस्तिष्क संरचना अथवा आनुवांशिक—दोनों में से कोई एक हो सकते हैं। यदि पहचान के बाद उचित समय पर इसकी रोक-थाम के उपाय या उपचार, देख-भाल आदि के उपाय नहीं किए जाएँ तो यह बीमारी गंभीर स्थिति में पहुँच जाती है। व्यक्ति स्वयं को सभी से अलग कर लेता है। उसका सामान्य और सामाजिक व्यवहार बुरी तरह प्रभावित हो जाता है।

इस समस्या से ग्रस्त व्यक्ति का परिवार भी प्रभावित होता है। कई मामलों में यह भी देखा जाता है कि रोगी और उसके परिवार को सामूहिकता वाले स्थानों पर उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है।

इस गंभीर समस्या के उपचार के लिए वैसे तो एंटीसाइकोटिक दवाएँ दी जाती हैं, परंतु साथ ही सामान्य जीवन में लौटने अर्थात पुनर्वास के लिए मनो-सामाजिक स्वास्थ्य की गतिविधियों को भी अपनाया जाता है। रोगी को गरिमापूर्ण जीवन प्रदान किया जा सके, इस उद्देश्य से मनो-सामाजिक पुनर्वास की प्रक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण समझी गई हैं।

इन प्रक्रियाओं-अभ्यासों में रोगी को सामान्य वातावरण, बातचीत व अन्य सोचने-समझने वाले कुशलता के कार्यों का प्रशिक्षण दिया जाता है। मनोसामाजिक पुनर्वास की ऐसी ही प्रक्रियाओं को आधार बनाकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य पूर्ण किया गया है।

यह शोध वर्ष—2022 में शोधार्थी अभिषेक तिवारी द्वारा मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत संपन्न किया गया है। शोधार्थी ने अपने इस विशिष्ट शोध अध्ययन को विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पंड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० संतोष विश्वकर्मा के निर्देशन में पूरा किया है। प्रायोगिक विश्लेषण एवं विवेचनात्मक रीति से संपन्न किए गए इस शोध का शीर्षक है—**'सोशल स्किल्स ट्रेनिंग एंड रिक्रियेशनल थैरेपी इन रिहेबिलिटेशन ऑफ पेशेन्ट विद सिजोफ्रेनिया।'**

शोधार्थी द्वारा अपने इस शोध के प्रायोगिक पक्ष को पूरा करने के लिए अर्द्ध-प्रायोगिक नमूनाकरण तकनीक का प्रयोग करते हुए दिल्ली क्षेत्र के 360 सिजोफ्रेनिया के रोगियों का चयन किया गया। ये सभी न्यूनतम एक वर्ष से मनो-औषधीय उपचार ले रहे थे और मनो-सामाजिक पुनर्वास के लिए पुनर्वास केंद्र में भरती थे।

जिन रोगियों का चयन किया गया, उनमें सिजोफ्रेनिया के विशिष्ट उप-प्रकारों जैसे—पैरानायड प्रकार, सिजोअफेक्टिव डिसऑर्डर और अविभेदित प्रकार से पीड़ित महिला व पुरुष—दोनों तरह के रोगी सम्मिलित थे। इन सभी की उम्र सीमा का मानदंड 20 से 65 वर्ष रखा गया। चयन के पश्चात प्रायोगिक संरचना के अनुसार सभी में से 4 समूहों का निर्माण किया गया, जिसमें 90 लोगों के 1 समूह को नियंत्रित समूह के अंतर्गत तथा शेष 3 को प्रायोगिक समूह में सम्मिलित किया गया।

इन तीनों में पुनः रोग प्रकार के अनुसार 30 की संख्या में 3 समूह बनाए गए। उक्त तीनों प्रायोगिक समूह में प्रथम 90 लोगों को 2 महीने तक सामाजिक कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम, द्वितीय समूह को 2 माह तक मनोरंजन चिकित्सा तथा तीसरे समूह को 1 माह की अवधि तक सामाजिक कौशल प्रशिक्षण एवं मनोरंजक चिकित्सा का उपचार प्रदान किया गया। शोध प्रयोग के आँकड़ों—तथ्यों को प्राप्त करने के लिए जिन शोध-उपकरणों को प्रयुक्त किया गया, वे हैं—

(I) पॉजिटिव एंड निगेटिव सिंड्रोम स्केल (PANSS)—वर्ष 1987 में इस उपकरण का प्रकाशन स्टेनली के, जुईस ओपनर व अब्राहम फिजबीन द्वारा किया गया, जिसका प्रयोग सिजोफ्रेनिया के रोगियों में लक्षणों की गंभीरता को मापने के लिए किया जाता है।

(II) सोशल मैच्यूरिटि स्केल (SMS)—यह वर्ष 1983 में डॉ. आर.पी. श्रीवास्तव द्वारा विकसित किया गया, जिसका प्रयोग रोगियों के सामाजिक विकास जैसे—समाजीकरण, नैतिक चरित्र, संवाद-संचार, आत्मबोध, परिवार गरिमामय सदस्यता, आत्मनिर्देशन, नागरिक कर्त्तव्य, मानवीय संबंध और स्वास्थ्य का व्यापक मूल्यांकन सम्मिलित है। शोध-अवधि में शोधार्थी द्वारा जिन उपचारात्मक तकनीकों को प्रयुक्त किया गया, उनमें सामाजिक कौशल प्रशिक्षण के अंतर्गत 45 मिनट अवधि के पच्चीस सत्र आयोजित किए गए।

इन सत्रों में जिन गतिविधियों-कुशलता का प्रशिक्षण प्रदान किया गया, वे हैं—अनुरोध करना, दूसरों की बातें सुनना, बातचीत शुरू करना व जारी रखना, बातचीत समाप्त करना, अपनी सकारात्मक भावनाओं को व्यक्त करना, मिलकर समाधान तक पहुँचना, कार्यों को स्वीकार-अस्वीकार करना, स्वयं की चिंताओं का निरीक्षण करना आदि।

इन सत्रों के बीच-बीच में समीक्षात्मक सत्र भी सम्मिलित हैं, ताकि रोगी की वास्तविक स्थिति को परखा जा सके। इसी क्रम में दूसरी तकनीक मनोरंजक चिकित्सा को प्रयुक्त किया गया। इस चिकित्सा का उद्देश्य रोगियों में सामाजिक रुचि बढ़ाने, संवाद करने, सफलता-असफलता का सामना करने और अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता को बढ़ाना था।

यह चिकित्सा 45 मिनट की अवधि के कुल पच्चीस सत्रों में प्रदान की गई। इसमें 15-15 मिनट की तीन प्रकार की गतिविधियों को सम्मिलित किया गया-

(i) शिल्प,

(ii) इनडोर-आउटडोर खेल और

(iii) नृत्य।

प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर उपकरणों की सहायता से प्राप्त आँकड़ों-तथ्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया। विश्लेषण से प्राप्त शोध परिणामों के आधार पर शोधार्थी ने यह पाया कि सिजोफ्रेनिया के रोगियों में उनकी पुनर्वास क्षमता के संदर्भ में सामाजिक कौशल प्रशिक्षण एवं मनोरंजन

चिकित्सा—दोनों का सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है। अत: स्पष्ट है कि मनोविकारों के लक्षणों के उपचार एवं सिजोफ्रेनिया के रोगियों में सामाजिक परिपक्वता को बढ़ाकर उनके पुनर्वास में ये दोनों तकनीकें प्रभावी भूमिका का निर्वाह करती हैं।

शोध परिणामों में सकारात्मक उपलब्धि के आधार पर शोधार्थी की मान्यता है कि यह शोध मनो-सामाजिक पुनर्वास प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण पहलू सामुदायिक एकीकरण को बढ़ाने में कारगर उपाय सिद्ध होगा।

समाज में व्याप्त भेदभाव व तिरस्कार की वर्तमान स्थिति में जो रोगी स्वयं को उपेक्षित, अपमानित पाते हैं, उनके लिए उत्तम संचार, सामाजिक संपर्क कौशल तथा जन-जागरूकता एवं ऐसा वातावरण तैयार किया जा सकता है, जहाँ रोगी सहजता में अपनी स्वीकार्यता का अनुभव कर सके तथा स्वयं की जीवन-गरिमा पर गर्व कर सके। परिणामों से स्पष्ट है कि यह प्रक्रिया रोगियों के लिए जीवन में आगे बढ़ने, प्रेरणा प्रदान करने व अन्य पहलुओं से लाभकारी सिद्ध होती है।

इसके साथ ही रोगियों के लिए सहायता समूह तैयार हो सकता है, जो रोग के संभावित कारणों को कम करने तथा बार-बार होने वाले दुष्प्रभावों को रोकने में सहायता कर सकता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इस शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपचारात्मक तकनीकें—प्रक्रियाएँ जिसमें सामाजिक कौशल प्रशिक्षण व मनोरंजक चिकित्सा सम्मिलित हैं—सिजोफ्रेनिया के रोगियों के लिए महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावी उपचार उपाय हैं। ये चिकित्सकीय उपाय के रूप में रोगियों के सामुदायिक एकीकरण को सहज बनाते हैं, जिससे रोग की पुनरावृत्ति को रोकते हुए एक सामान्य गरिमापूर्ण जीवन प्रदान किया जा सकता है। ❑

वेद का गुह्य ज्ञान ही वह बीज है, जो आगे जाकर वेदांत के रूप में निरूपित हुआ। जिन विचारों के चारों ओर शेष सब केंद्रित है, वह है—सत्य, प्रकाश, अमरत्व की खोज।

एक सत्य है, जो बाह्य सत्ता के सत्य से गंभीरतर और उच्चतर है, एक प्रकाश है, जो मानवीय समझ के प्रकाश से बृहत्तर और उच्चतर है एवं जो अंत:प्रेरणा द्वारा तथा स्वत: आता है, वह अमरत्व है, जिसकी तरफ आत्मा को उठना होता है।

इसके लिए हमें अपना रास्ता निकालना है, इस सत्य और अमरत्व के संपर्क में आने के लिए, सत्य में उत्पन्न होने के लिए, उसमें बढ़ने के लिए, सत्य के लोक में आत्मत: आरोहण करने के लिए और उसमें निवास करने के लिए। ऐसा करना परमेश्वर के साथ अपने को युक्त करना है और मर्त्य अवस्था से अमरत्व में पहुँच जाना है। यह वैदिक रहस्यवादियों की प्रथम और केंद्रीय शिक्षा है।

—महर्षि अरविंद

युगगीता – 315

धर्म-अधर्म का भेद नहीं समझती राजसी बुद्धि



(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की तीसवीं एवं इकतीसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के उनतीसवें श्लोक की विवेचना इससे पूर्व की किस्त में प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि अब मैं प्रकृति के तीनों गुणों के अनुसार तुम्हें विभिन्न प्रकार की बुद्धि एवं धृति के विषय में विस्तार से बता रहा हूँ। वह बुद्धि सतोगुणी है, जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित, क्या कर्त्तव्य है और क्या अकरणीय है ? किससे भयभीत होना चाहिए और किससे नहीं भयभीत होना चाहिए तथा क्या बंधन में डालने वाला है और क्या मोक्ष प्रदान करने वाला है ? भगवान श्रीकृष्ण ने इससे पिछले नौ श्लोकों में कर्म के संघटकों का वर्णन करते हुए ये बताया था कि उनकी तीन श्रेणियाँ हैं। अब उसी आधार पर वे कार्य की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले दो कारकों, बुद्धि तथा धृति के विषय में बता रहे हैं। बुद्धि सात्त्विक होने पर विवेक का रूप धारण करती है तथा क्या उचित है और क्या अनुचित है, इस भेद को स्पष्ट करती है तो वहीं धृति, सात्त्विक होने पर संकल्प का रूप धारण करती है।

इससे पूर्व इसी अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मसंग्रह के तीन कारण बताए थे—करण, कर्म और कर्त्ता। इनमें से कर्म करने के लिए इंद्रियाँ आदि जो करण हैं, उनके त्रिगुणात्मक भेद नहीं होते; क्योंकि इंद्रियाँ बुद्धि के अनुसार कार्य करती हैं अर्थात वे उपकरण मात्र हैं, अतः श्रीभगवान यहाँ बुद्धि के ही भेदों पर चर्चा करते हैं। बुद्धि को निश्चय में बदलने वाली शक्ति धृति है, अतः बुद्धि के साथ ही धृति का भेद भी वे इसी के साथ बताते हैं। इन सबमें वे सबसे पहले सतोगुणी बुद्धि के विषय में अर्जुन को बताते हैं कि सतोगुणी बुद्धि कर्त्ता को यह भान कराती है कि क्या उचित है और क्या अनुचित ? इसी को विवेक कहा जा सकता है।]

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी
॥ 30॥

शब्दविग्रह—प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, कार्याकार्ये, भयाभये, बन्धम्, मोक्षम्, च, या, वेत्ति, बुद्धिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी।

शब्दार्थ—हे पार्थ! (**पार्थ**), जो बुद्धि (**या**), प्रवृत्तिमार्ग (**प्रवृत्तिम्**), और (**च**), निवृत्तिमार्ग को (**निवृत्तिम्**), कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को (**कार्याकार्ये**), भय और अभय को (**भयाभये**), तथा (**च**), बंधन (**बन्धम्**), और (**च**), मोक्ष को (**मोक्षम्**), यथार्थ जानती है (**वेत्ति**), वह (**सा**), बुद्धि (**बुद्धिः**), सात्त्विकी है (**सात्त्विकी**)।

यहाँ भगवान बुद्धि एवं धृति के गुणात्मक भेदों को पृथक-पृथक कहेंगे—एक शब्द का प्रयोग करते हैं 'प्रोच्यमानमशेषेण' अर्थात वे कहते हैं कि बुद्धि और धृति के विषय में जो-जो आवश्यक बातें हैं, उन सबको मैं विस्तार से कहूँगा, जिसके बाद फिर कुछ और जानना शेष नहीं रह जाएगा।

इन सबमें वे सर्वप्रथम सतोगुणी बुद्धि के विषय में कहते हैं कि सतोगुणी बुद्धि कर्त्ता को यह भान कराती है कि क्या उचित है और क्या अनुचित। संसार की ओर कामना सहित ले जानी वृत्ति **'प्रवृत्ति'** है तो वहीं परमात्मा की तरफ ले जाने वाली वृत्ति **'निवृत्ति'**। ये जानने से यह स्पष्ट हो जाता है कि करने योग्य कर्म कौन-सा है और न करने योग्य कर्म कौन-सा है—इसी से कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य का निर्धारण हो पाता है।

श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि जिसको उचित, अनुचित, करणीय एवं अकरणीय का बोध है—उसे स्वतः ही भय एवं अभय का बोध हो जाता है। जिसका हृदय परमात्मा की ओर अनुरक्त है एवं जो विवेकसंगत कर्मों को करता है, उसकी बुद्धि सतोगुणी होती है और तब उसका जीवन निरापद हो जाता है।

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥ *31*॥

शब्दविग्रह—यया, धर्मम्, अधर्मम्, च, कार्यम्, च, अकार्यम्, एव, च, अयथावत्, प्रजानाति, बुद्धिः, सा, पार्थ, राजसी।

शब्दार्थ—हे पार्थ! (मनुष्य) (**पार्थ**), जिस बुद्धि के द्वारा (**यया**), धर्म (**धर्मम्**), और (**च**), अधर्म को (**अधर्मम्**), तथा (**च**), कर्त्तव्य (**कार्यम्**), और (**च**), अकर्त्तव्य को (**अकार्यम्**), भी (**एव**), यथार्थ नहीं (**अयथावत्**), जानता (**प्रजानाति**), वह (**सा**), बुद्धि (**बुद्धिः**), राजसी है (**राजसी**)।

अर्थात हे पार्थ! ऐसी बुद्धि राजसिक कहलाती है, जो धर्म और अधर्म तथा उचित और अनुचित आचरण के मध्य भेद करने में भ्रमित रहती है। श्रीभगवान यहाँ कहते हैं कि जिसकी बुद्धि राजसी है वह न्याय, नीति, धर्म के पथ पर बढ़ने या न बढ़ने के मध्य में द्वंद्व में रहती है। जो शास्त्रविहित कर्म हैं, आचरण हैं—वे सब धर्म की श्रेणी में आते हैं और जितने भी शास्त्रों में निषिद्ध कर्म हैं—वे अधर्म की श्रेणी में आते हैं।

महाभारत में कथा आती है कि विदुर ने दुर्योधन से प्रश्न किया—"हे दुर्योधन! तुम और तुम्हारे भ्राता युधिष्ठिर एक ही गुरुकुल में गए, तुम दोनों की शिक्षा-दीक्षा एक ही गुरु से हुई, फिर ये कैसे घटित होता है कि तुम्हारा भ्राता सारे कर्म, धर्म के करता है; जबकि तुम सारे कर्म अधर्म के करते हो—ऐसा क्यों?" यह सुनकर दुर्योधन ने उत्तर दिया—

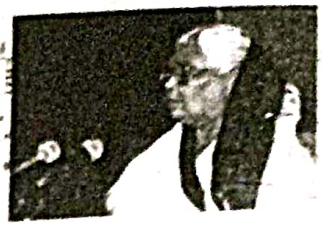
"जानापि धर्मं न च मे प्रवृत्ति
जानापि अधर्मं न च मे निवृत्ति
केनोऽपि देवेन हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोऽसि तथा करोमि।

"अर्थात मैं जानता हूँ कि धर्म क्या है, पर उस ओर मेरी प्रवृत्ति ही नहीं है। मैं यह भी जानता हूँ कि अधर्म क्या है, पर उसे छोड़ने का मेरा मन नहीं है। ऐसा लगता है कि कोई अंदर आ के बैठ गया है और जहाँ मुझे नियुक्त कर देता है, वो करने के लिए मैं बाध्य हो जाता हूँ।" काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, राग, रंग के कारण राजसी बुद्धि मिश्रित हो जाती है। यह स्पष्ट देखने पर भी कि धर्म क्या है? अधर्म क्या है—राजसी बुद्धि निजी स्वार्थों के वशीभूत होकर अधर्म का सहारा लेती है। इसीलिए भगवान कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति फिर कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के भेद को नहीं जान पाता और गलत राह पर चल बैठता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि राग होने से राजसी बुद्धि में स्वार्थ, संकीर्णता इत्यादि का समावेश हो जाता है। इन दोषों के रहते हुए बुद्धि के लिए धर्म-अधर्म, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के मध्य का भेद कर पाना संभव नहीं हो पाता। किसी भी कार्य के गुण-दोष की पहचान किए बिना वह त्याज्य वस्तु का भोग करता चला जाता है और भोग्य वस्तु को ठुकराता चला जाता है। (क्रमशः)

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

सुखी दांपत्य जीवन (पूर्वार्द्ध)



परमवंदनीया माताजी जिनकी जन्मशताब्दी गायत्री परिवार ही नहीं, वरन समस्त विश्वमानवता अत्यंत उत्साह के साथ मना रही है—उनके उद्बोधनों की यह एक अनुपम विशेषता रही है कि उन्होंने आध्यात्मिक जगत् के अत्यंत गूढ़ विषयों का निष्पादन अत्यंत सुगमता के साथ किया है। दांपत्य जीवन को ऋषि-जीवन का आधार माना जाता है। वंदनीया माताजी का प्रस्तुत उद्बोधन उसी महत्त्वपूर्ण विषय की विवेचना करता हुआ प्रस्तुत हुआ है। इसमें वंदनीया माताजी कहती हैं कि दांपत्य जीवन का आधार विश्वास और प्रेम है। जब तक एकदूसरे के प्रति आस्था न हो, तब तक दांपत्य जीवन की सफलता संदिग्ध रहती है। वंदनीया माताजी विद्योत्तमा से लेकर सौभरि ऋषि का उदाहरण इसी उद्देश्य से प्रस्तुत करती हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

दांपत्य जीवन का आधार

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

''ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।''

बेटियो! एवं प्रज्ञा परिजनो! दांपत्य जीवन विश्वास और प्रेम के आधार पर चलता है। इनमें से कोई भी, किसी भी एक की कमी हो जाती है, तो दांपत्य जीवन डगमगा जाता है। दांपत्य जीवन की सार्थकता एकदूसरे के प्रति अगाध प्रेम, विश्वास और आस्था के ऊपर निर्भर है। इसे हम निष्ठा कह सकते हैं।

निष्ठा शब्द है तो ऊँचा, लेकिन बगैर इसके काम नहीं चलता है। एकदूसरे के प्रति आस्था कहिए। जब तक आस्था नहीं रहेगी, तब तक जीवन की गाड़ी आगे चलेगी ही नहीं। आस्था एक पक्ष की होनी चाहिए अथवा दोनों पक्षों की? दोनों ही पक्षों की होनी चाहिए, एकतरफा गाड़ी नहीं चलती है। एकतरफा चला भी ले जाएगा, तो महानता उसकी है, जो अपनी तरफ से चला रहा है और जो दूसरा पक्ष अपनी तरफ से चला ही नहीं रहा है, तो विशेषता उसकी नहीं है। विशेषता किनकी हैं? जो अपनी ओर से चलाते हैं।

अच्छा तो यही होना चाहिए कि दोनों का समरस जीवन इस तरीके से चले कि लोग उनका उदाहरण देते ही बनें, सराहते ही रहें। चलिए सराहें नहीं तो उससे शिक्षण तो ले ही सकते हैं कि किस तरीके से दांपत्य जीवन जीना चाहिए और एकदूसरे को ऊँचा उठाने में किस कदर सहयोग करना चाहिए। चाहे वो हमारी वाणी के द्वारा हो, हमारे व्यवहार के द्वारा हो, लेकिन एकदूसरे को आगे बढ़ाना चाहिए।

दांपत्य जीवन की सफलता का रहस्य यही है, यह नहीं है कि जरा-जरा-सी बात पर कटुता

उत्पन्न हो गई, तलाक का मौका आ गया। क्यों आ गया? एकदूसरे के प्रति विश्वास नहीं है, यह नहीं है कि हम इसके साथ रहेंगे। न तो पत्नी के प्रति पति की आस्था है, न विश्वास है कि कहीं ऐसा न करे कि ये हमको धोखा दे जाए।

पाश्चात्य सभ्यता का यही तकाजा है, वहाँ यही है कि आज शादी हुई और कल तलाक हो गया। क्यों? उसको विश्वास नहीं है कि पत्नी हमारा आजीवन साथ देगी भी कि नहीं देगी और पत्नी को यह विश्वास नहीं है कि आज ये लाया है और कल ये ठोकर मारकर हमको अलग भी कर सकता है। क्यों? क्योंकि एकदूसरे को एकदूसरे का विश्वास प्राप्त नहीं है, इसलिए होता है। यदि विश्वास प्राप्त हो, तो व्यक्ति बड़े-से-बड़े संकटों को झेलते हुए भी अपने दांपत्य जीवन की मधुरता और सरसता को बनाए रख सकता है। किस तरीके से बनाए रख सकता है, इसके मैं थोड़े से उदाहरण आपके सामने रखूँगी।

विद्योत्तमा का उदाहरण

विद्योत्तमा ने अपने पति को बनाया था। जिस पेड़ की डाल पर कालिदास बैठा था, उसी को वह काट रहा था। इस मूर्ख को इतना भी नहीं मालूम था कि जिस पेड़ को हम काट रहे हैं, उसी पर से नीचे गिर जाएँगे। फिर क्या होगा? चूँकि विद्योत्तमा एक सफल शास्त्रकार और विद्वान मानी जाती थीं, तो पंडितों ने सोचा कि उसका अहंकार कुछ नीचा करना चाहिए।

पंडितों ने देखा कि कालिदास जिस डाल पर बैठा है, पेड़ की उसी डाल को काट रहा है, इससे ज्यादा मूर्ख कोई नहीं हो सकता है। चलो उसकी शादी इसी से करा दो और आपको मालूम ही होगा, ज्यादा व्याख्या में मैं नहीं जाऊँगी। ये हुआ कि कालिदास की और विद्योत्तमा की शादी हो गई। जब विद्योत्तमा को मालूम पड़ा कि मैं योग्य हूँ और मेरा पति अयोग्य है, पढ़ा-लिखा नहीं है, तो चाहे उसने कर्कश ढंग से ही कहा था कि तुझको यह भी नहीं मालूम है कि संस्कृत में ऊँट किसको कहते हैं? मैं तो समझती थी कि तू तो कोई प्रकांड पंडित है, पर मेरे पल्ले मूर्ख ही बँध गया।

एक स्थितप्रज्ञ महापुरुष से जिज्ञासु ने पूछा—"भगवान के पास कामना व्यक्त करने से क्या वो उन्हें पूर्ण करते हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया—"यदि भगवान के पास हम अपनी कामनाएँ लेकर गए तो भगवान भी हमारे लिए संसार बन जाते हैं और संसार के पास यदि हम निष्काम होकर गए तो संसार भी हमारे लिए भगवान बन जाता है।"

यह बात अलग है, लेकिन उसने जी-जान से कालिदास को बनाया और वो कवि कालिदास बन गए। जिन्होंने मेघदूत नाम का ग्रंथ लिखा है। कौन? कवि कालिदास ने। वो उच्चकोटि के कवि हो गए, तो इस तरीके से एकदूसरे के प्रति आस्था होनी चाहिए।

सौभरि ऋषि का उदाहरण

एक उदाहरण और आता है—सौभरि ऋषि का, जिनकी पत्नी का नाम था शोभा। भोजन करने के बाद उन्होंने यह कहा कि मुझे गुड़ खाने की आदत है, जरा थोड़ा-सा गुड़ लाना शोभा। तो उसने कहा कि गुड़ तो समाप्त हो गया? एक शिष्य यह सब देख रहा था, उसने पलट करके कहा कि अरे! गुड़ तो हानिकारक है। गुड़ कोई अच्छी चीज नहीं है। उन्होंने कहा कि साहब! अभी तो आप यह कह रहे थे कि गुड़ खाने से खाना हजम होता है और अब आप यह कह रहे हैं कि गुड़ की कोई आवश्यकता नहीं है और गुड़ हानिकारक है। उन्होंने कहा कि ये जीभ का संयम है, इंद्रियों का संयम है कि अपने ऊपर काबू रखना चाहिए। आदत को क्यों बिगाड़ें? एकदूसरे का सहयोग करें।

याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का उदाहरण

याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी के बारे में भी यही है। जब वो वन को जाने लगे तो उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों को बैठाया और कहा कि मेरा जो राज-पाट है, इसको तुम लोग सँभालो। आधा-आधा ले लो और संयुक्त रूप से मिल करके चलाना चाहो तो चलाना। तो मैत्रेयी ने कहा कि राज-पाट सँभालेंगी गार्गी और मैं तो आपके साथ वन को चलूँगी।

क्यों? एक क्यों गई? एक ने राज-पाट क्यों पसंद किया और एक ने वन क्यों पसंद किया? इसलिए किया कि वे एकदूसरे में इतने घुले-मिले थे कि एकदूसरे के बगैर वह जिंदा नहीं रह सकते थे और वो भौतिकता से अलग थी, भौतिकता उसको पसंद नहीं थी। उन्होंने कहा कि जो जीवन का लक्ष्य है, जिसमें श्रेष्ठता निहित है, वही काम मुझे करना चाहिए और वो पति के पदचिह्नों पर चलने के लिए तैयार हो गई और वन में जा करके दोनों ने तपस्या की। यह है एकदूसरे के प्रति विश्वास और जिसे आस्था कहते हैं।

कबीर का भी यही उदाहरण है। एक शिष्य आया और उसने कहा कि मैं शादी करना चाहता हूँ, तो उन्होंने कहा कि देखो शादी जो होनी चाहिए, वह किसी लक्ष्य के लिए, किसी उद्देश्य के लिए होनी चाहिए। बगैर उद्देश्य के शादी की क्या आवश्यकता है? आखिरकार तुम शादी क्यों करना चाहते हो और करना ही है तो मैं आपको बताता हूँ कि नारी नर के लिए कितनी सहयोगी होती है।

यदि उसको बनाया जाए तो और नहीं बनाया गया तो मैं कहती हूँ कि जितनी अपने घर से वो आई थी, भावनाओं की दृष्टि से, संस्कारों की दृष्टि से उससे भी गई-गुजरी हो जाएगी; क्योंकि संस्कार बनाए जाते हैं और दिए जाते हैं। आप हमको ही देख लीजिए कि हमको बनाया गया है। हम जैसे हैं और जो दिखाई पड़ते हैं, वस्तुतः ऐसे थे नहीं, हमको बनाया गया और हमने उसमें सहयोग किया कि हमको बनना है। जिसका पल्ला पकड़ा है तो जीवनभर उसी रास्ते पर चलना है, जिस रास्ते पर वे चल रहे हैं।

यह बात अलग है कि पति भटकता है और गलत मार्ग पर चलता है तो उसको रोका जाना चाहिए। ऐसा नहीं कि बेलगाम का घोड़ा जिधर को चलता है, तो चलता ही रहना चाहिए। नहीं, पत्नी का कर्त्तव्य है कि उसको सही रास्ते पर लाए और पति का भी कर्त्तव्य है कि जैसी भी पल्ले पड़ गई है वो हीरा है और मोती है। उसको ढालने का काम उसके पति का होता है।

पति-पत्नी—एकदूसरे के पूरक

पति और पत्नी जब दोनों एक हो जाते हैं, तो फिर क्या कहने की है। उस दांपत्य जीवन में स्वर्ग-ही-स्वर्ग है और जितने बड़े काम किए हैं वो एक

सूत्र में बँध करके ही किए हैं। जितने अपने ऋषि हुए हैं, जो समाज-सुधारक हुए हैं, जो संत हुए हैं, उनमें से अधिकांश शादीशुदा थे। वे एकदूसरे के पूरक थे और एकदूसरे को उठाने के लिए और समाज में आगे बढ़ने के लिए, समाज की सेवा के लिए एकदूसरे के पूरक रहे हैं।

ऐसा नहीं है कि एक ने दूसरे का विरोध किया हो। ठीक है गाड़ी एकपक्षीय भी चलती है, पर दोनों पहिये जब समान होते हैं तो शानदार मंजिल पार की जाती है और कहीं ऐसा होता है कि एक पहिया छोटा और एक पहिया बड़ा, एक इधर गिरा, एक उधर गिरा, फिर इससे वो चलेगा क्या? इससे नहीं चलेगा। हाँ, जब दोनों एक हो जाते हैं, तब तो मैंने अभी आपको उदाहरण दिया था न।

अब मैं आपको सीता जी का उदाहरण देने जा रही हूँ। जब सीता अशोक वाटिका के नीचे बैठी थीं, तब विभीषण की पत्नी आई और उसने कहा कि तुम इतनी दु:खी और विह्वल क्यों हो रही हो? तो उन्होंने कहा कि मुझे हर समय राम का स्मरण बना रहता है। एक पल को भी मैं भूल नहीं पाती हूँ, अपने राम को। मेरी वही दशा हो रही है, जब कि राम वन के लिए चल रहे थे और मैंने कहा था कि मुझे भी ले चलिए।

उनके मन में नहीं था तो मैंने ये कहा था—

''जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।
तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥''

तो उस समय मेरा हाल यह हो रहा था; जबकि मैं परिवार के बीच में थी, सास-ससुर के बीच में थी और अपने देवरों के बीच में, देवरानी के बीच में थी। क्या मुझे कोई कष्ट था? लेकिन मुझे एक ही कष्ट था कि मेरा पति बाहर वन में जा रहा है और मैं यहाँ सुख की और चैन की जिंदगी जिऊँगी। नहीं, मेरा कर्त्तव्य है कि मुझे भी वन जाना चाहिए। आई तो सही वन में, लेकिन भगवान ने यह क्या किया? हमको जुदा कैसे कर दिया? हम तो यह सोच रहे थे कि एक के बगैर दूसरा एक पल भी जिंदा नहीं रह सकता। हम किस प्रकार अपनी जिंदगी बसर करेंगे, तो विभीषण की पत्नी ने कहा कि सीता यह जो तुम्हारा हाल हो रहा है। हूबहू यही हाल भगवान राम का हो रहा है। एक का नहीं, दोनों का ही हो रहा था, इसलिए पुरुषोत्तम भगवान उनका नाम पड़ा। तो उन्होंने कहा कि तुम्हारी याद में भगवान राम भी विह्वल हो रहे हैं। एकदूसरे को ऐसे ही होता रहेगा। तो फिर काम किस तरीके से चलेगा? तुम राम हो जाओगी और राम सीता हो जाएगा।

पाठक ध्यान दें

नए डाक नियमों के अनुसार अब बिना पिनकोड व मोबाइल नंबर के कोई डाक नहीं जा सकेगी।

कृपया सभी पाठक अपनी सदस्य संख्या, संपूर्ण नाम पते सहित, पिनकोड, मोबाइल, ई-मेल, व्हाट्सएप नंबर अखण्ड ज्योति संस्थान के पते पर डाक से, ई-मेल akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org पर अथवा व्हाट्सएप नं. 9927086290 पर तुरंत भेजने का अनुग्रह करें।

आगे से अपने सभी पत्र व्यवहार में पिनकोड, मोबाइल नंबर व व्हाट्सएप नंबर का उल्लेख अवश्य करें।

नहीं, अपनी हिम्मत जुटाओ, शक्ति जुटाओ, भगवान एक-न-एक दिन जरूर आपको सामर्थ्य और शक्ति देंगे, आपको मिलाएँगे, यह कैसे आप भूल गईं?

पति-पत्नी मिलकर काम करें

ये होता है दांपत्य जीवन का रसास्वादन, जिसे सुखमय जीवन कहना चाहिए। जिसने इसे चख लिया वो आनंदित हो गया। समाजसेवा भी दोनों ही करेंगे, तो अच्छा लगेगा। ठीक है, कोई योग्य है, कोई अयोग्य है, मान लीजिए पत्नी इतनी पढ़ी-लिखी नहीं है तो घर में सुख-शांति तो बनाए रख सकती है। उसकी मनोभूमि को तो बना सकती है, पति को शांति और संतोष तो दे सकती है। यदि पत्नी अयोग्य है तो पति का कर्त्तव्य बनता है कि उसके साथ चले। उसका तिरस्कार ही करना है क्या? उसका तिरस्कार नहीं करना है, बल्कि उसको अपने समकक्ष बनाना है।

हरिश्चंद्र की कहानी

शैव्या और हरिश्चंद्र, नल और दमयंती की कहानी तो आपने सुनी होगी। शैव्या हरिश्चंद्र की जीवनसंगिनी थी और जब विपत्ति का समय आया और उनके गुरु का आदेश आया कि हमको राज-पाट चाहिए। वो तो कसौटी थी, विश्वामित्र को कुछ चाहिए था? नहीं, विश्वामित्र को कुछ नहीं चाहिए था। चाहिए होता तो अपना राज-पाट क्यों छोड़ते, वो तो छोड़ करके ऋषि हुए हैं। वो तो केवल अपने शिष्य की मनोभूमि को देख रहे थे। उसके बगैर राज-पाट के दिए बिना उनका काम नहीं चल रहा था क्या?

चलता, लेकिन हरिश्चंद्र, आज हरिश्चंद्र नहीं हुआ होता। यदि हरिश्चंद्र ने वो भूमिका अदा नहीं की होती और अपने गुरु के लिए समर्पण नहीं किया होता तो? फिर मान लीजिए कि वो बिक जाता। शैव्या अपने सुख और समृद्धि में कहीं वृद्धि कर रही होती तो फिर शैव्या का नाम रहा होता क्या? शैव्या का नाम नहीं रहा होता?

शैव्या हरिश्चंद्र से आगे थी; क्योंकि हरिश्चंद्र ने अपने गुरु को वचन दिया था, शैव्या ने तो नहीं दिया था न, लेकिन उनने कहा कि नहीं, जब सुख में हम साथ रहे, राज-पाट हमने भोगा है, तो विपत्ति के समय भी हमें बढ़-चढ़ करके ही कार्य करना है। उसने कहा कि पतिदेव पहले मैं बिकूँगी; क्योंकि मैं आपकी सहधर्मिणी हूँ, आप बड़े हैं और मैं छोटी हूँ। उम्र में भी छोटी हूँ तो पहला हक मेरा है, पहले मैं बिकूँगी।

बच्चे ने कहा नहीं पिताजी! मैं बिकूँगा। तीनों में रस्साकशी होने लगी कि कौन बिकेगा, कौन बिकेगा। तो बच्चों को जो संस्कार दिए जाते हैं, उन संस्कारों के बल पर विजय पाते हैं, वही उसके अंदर था। बच्चे के अंदर भी माँ-बाप के जो विचार हैं, माँ-बाप के जो संस्कार हैं, वही तो बच्चे में आएँगे। बच्चे ने कहा पिताजी! हम भी बिकेंगे और वो तीन-तेरह हो गए।

उनमें से एक चांडाल के यहाँ बिक गया और एक किसी सेठ के यहाँ बिक गई और बच्चा बिक गया सो अलग, लेकिन यहाँ तक ही नहीं, शैव्या जिस समय अपने बच्चे की लाश लेकर के हरिश्चंद्र के पास गई तो दोनों ने पहचान लिया कि यही मेरा पति है और यही मेरी पत्नी है। उसने कहा कि मैं अपने बच्चे को आपके यहाँ दफनाने के लिए लाई, जलाने के लिए लाई हूँ, तो हरिश्चंद्र ने कहा, शैव्या सारी जिंदगी तूने मेरा साथ दिया है, क्या मुझे डिगाएगी तू? तो उसने कहा कि बस, इससे ज्यादा मत कहना। मैं बच्चे का मोह छोड़ सकती हूँ, लेकिन जिस पथ पर चली हूँ और आपको चलने की मैंने प्रेरणा भी दी है और आपके साथ-साथ मैं

चली हूँ, तो वही राह मैं चलूँगी और उसने आधी साड़ी फाड़कर के उस बच्चे के शव पर डाल दी।

फिर तो जो होना था, भगवान की कृपा थी कि वह उसकी नीयत की परख कर रहा था। बच्चा भी जिंदा हो गया। हरिश्चंद्र को भी राज-पाट मिल गया, वो बात अलग है। मैं इस बात को नहीं कह रही हूँ। मैं तो यह कह रही हूँ कि पति-पत्नी एक दूसरे के पूरक सहोदर भाई की तरह हैं, मित्रों की तरह हैं और मित्रों से भी आगे हैं। पत्नी और पति एकदूसरे के विश्वासपात्र बने रहें।

नल-दमयंती की भी यही कहानी है। वह वन में जा रही थी और मनुष्य के वेश में एक राक्षस उसकी इज्जत पर हाथ डाल रहा था, लेकिन दमयंती ने वो शौर्य और वो वीरता दिखाई, जिससे वह सफल नहीं हो सका। नारी चाहे तो वो देवी बन सकती है, श्रद्धा का पात्र बन सकती है और न चाहे तो कृत्रिम वेश बना करके जैसे कि आज की जो हवा चल रही है। अनावश्यक कृत्रिमता, पहनावे-ओढ़ावे में कृत्रिमता और साज-शृंगार में कृत्रिमता, पाउडर, लिपिस्टिक से लेकर के न मालूम क्या क्या लगाते हैं और हम उनको आमंत्रित करते हैं। किनको? जो बदनियत वाले हैं। उनको आमंत्रित करते हैं और कहते हैं कि आइए आप हमको देखिए, आकर्षित कीजिए। नहीं, बेटियो, ये नहीं है। बच्चो, ये नहीं है। शृंगार जो होता है, वो आंतरिक आभूषणों का होता है।

गुण, कर्म और स्वभाव के जो आभूषण हैं वो सदैव चलेंगे और जो कृत्रिमता लिए हुए हैं, उसमें छिछोरापन आ जाएगा। इसमें आपकी इज्जत होने वाली नहीं है, आपकी उसी तबके के व्यक्ति इज्जत करेंगे, जिसमें बुराई है, जिस वातावरण में वे पले हैं, तो वे आपको पसंद करेंगे और जो समझदार है, गंभीर व्यक्ति है, दूरदर्शिता वाला है, वो इन छिछोरे पहनावे-ओढ़ावे और साज-शृंगार पर कभी नहीं करेगा।

सीता जी आभूषण पहनकर के गई थीं। किनके यहाँ? अत्रि ऋषि के आश्रम में तो सती अनसूया को देख करके वो पानी-पानी हो गईं। अनसूया ने कहा कि देवी आभूषण अपने गुण के होते हैं, जहाँ-कहीं भी जाएँगे, लोग आपकी तारीफ करेंगे और आप यदि आभूषण और ये कपड़े पहनकर के वन में जाएँगी तो आपका मोह इससे नहीं गया। मोह को एक तरफ रखें। मोह नहीं होना चाहिए और उसी समय सीता ने अपने सारे आभूषण उतार दिए और जिस तरीके से पति था, उसी तरीके से वो भी वन में चली गईं। तो ये जो आभूषण हैं, हमारे कौन-से आभूषण हैं? वो हमारी सहनशीलता के हैं, उदारता के हैं और हमारी वाणी के हैं, जिसमें कि हम अपना पारिवारिक जीवन अच्छी तरह से बिता सकें।

देवर्षि नारद ने भगवान विष्णु से पूछा—"प्रभु! सच्चे भक्त होने का प्रमाण क्या है?"

भगवान बोले—"नारद! भक्ति का प्रमाण यह नहीं कि क्या मिला और किसे क्या नहीं मिला? जिसमें ईश्वर के प्रति भक्ति उमड़ती है, वह व्यक्ति अपनी ही नहीं सारी मानवता की पीड़ा समझता है। जिसमें इन गुणों का समावेश हो जाता है, वही सच्चा भक्त है।"

सास को हम माँ जैसा मानें, ससुर को हम पिता जैसा मानें, पति का उतना सम्मान करें। सम्मान का मतलब आरती उतारना नहीं होता है, सम्मान का मतलब होता है कि अपनी सहनशीलता का परिचय दें कि सबके सामने उसका अपमान नहीं होना चाहिए। कोई बात कहना है तो आप उसको कहिए तो सही, ऐसा तो नहीं कि मत कहिए, पर वाणी पर संयम रखते हुए कहिए। उसका अनादर मत करिए।

फिर आप समझ लीजिए कि आपने उसका दिल जीत लिया। पत्नी ने पति का और पति ने पत्नी का हृदय जीत लिया। फिर कोई खाई पड़ेगी क्या? बिलकुल खाई नहीं पड़ेगी। आपकी आस्था दिनोंदिन जमती जाएगी और दिनोंदिन जब जमती जाएगी, तो आपके परिवारवाले आपसे शिक्षण लेंगे। मुहल्ले वाले आपसे शिक्षण लेंगे, समाजवाले लेंगे और मैं तो कहूँगी कि पूरा राष्ट्र आपसे शिक्षण लेगा। कस्तूरबा गांधी की तरह से शिक्षण ग्रहण करेंगे।

कस्तूरबा और महात्मा गांधी दोनों जीवन भर साधु वेश बना करके, महात्मा वेश बना करके सारी जिंदगी जिए। उन्होंने बा से कहा, किनसे? कस्तूरबा से। गांधी जी बा कहते थे। बा मतलब, गुजरात में माँ को कहते हैं और सारी जिंदगी उन्होंने एक लक्ष्य के लिए, राष्ट्र के उत्थान के लिए लगा दी, जेल गए। कई बार दोनों पति-पत्नी जेल गए।

इसी प्रकार जयप्रकाश नारायण थे और प्रभावती थी। प्रभावती ने सारा-का-सारा जीवन राजनीति में लगा दिया। स्वतंत्रता आंदोलन में लगा दिया और पति के सहयोग में लगा दिया। जयप्रकाश नारायण जहाँ-कहीं भी जाते थे, उनके साथ प्रभावती जाती थीं। उनके शरीर की देख-भाल के लिए जाया करती थीं।

ये बात हुई किनकी? महिलाओं की, लड़कियों की हुई। इसी तरीके से पुरुष को भी पीछे नहीं रहना है कि नहीं साहब! सारे-के-सारे नियम जो कुछ भी होते हैं, केवल महिलाओं के लिए ही हैं। संयम है तो महिलाओं के लिए है, पुण्य-पाप की गति जो भी कुछ है, वो सब महिलाओं के जिम्मे है। ऐसा नहीं है, पुरुषों के लिए भी है।

भगवान राम ने तो अश्वमेध यज्ञ किया था। उस समय सीता वाल्मीकि के आश्रम में थीं और जब वाल्मीकि ने कहा कि बेटी! तुम्हारे पति अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं, उसमें तो पत्नी की आवश्यकता होती है। हाँ ऐसा ही मालूम पड़ता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि राम ने शादी कर ली है?

तो सीता ने कानों पर हाथ रख करके ये कहा कि मैं गुरुदेव कैसे सुन रही हूँ? अपने राम के लिए मुझे विश्वास नहीं होता कि राम एक पत्नी के रहते हुए और दूसरी शादी कर लेंगे। ये मुझे कतई विश्वास नहीं है और होगा भी नहीं। संभव है यह बात मिथ्या ही होगी और वो मिथ्या ही थी। वो मिथ्या ही हुई।

बेटे, ये होते हैं आदर्श, भगवान राम ने वसिष्ठ से कह दिया। वसिष्ठ ने कहा कि राम दूसरी शादी की आवश्यकता पड़ेगी; क्योंकि यज्ञ करने जा रहे हो, तो उन्होंने कहा कि मेरे जीवन में सीता ही आई है और सीता की छवि और सीता का ही चित्रण रहता है। हर समय मेरी रग-रग में सीता समायी हुई है। गुरुदेव मैं शादी नहीं करूँगा, तो क्या करोगे? उनने कहा कि विकल्प है। सीता नहीं है तो वो देवी है और उन्होंने सोने की प्रतिमा बनाकर के यज्ञस्थल पर रख दिया। यज्ञ हो गया। उसके बाद लव-कुश हो गए, उन्होंने क्या-क्या अपने पिता के लिए कहा, वो भी आपको मालूम है, मैं क्या कह रही थी? एक पक्ष नहीं, दोनों पक्ष देखने होते हैं।

संत तुकाराम की पत्नी थी। बहुत ही कर्कश स्वभाव की थी और उनके पति बहुत सौम्य, उदार थे। उन्होंने कहा कि दांपत्य जीवन में यह होता ही रहता है। चलिए, थोड़ा-सा उनकी कहानी बताती हूँ। वे गन्ना लेने गए थे और गन्ने की जब गठरी लेकर के आए तो बच्चे साथ में थे। वे एक-एक करके माँगते गए और वो सारी-की-सारी गठरी को दे आए। क्यों दे आए? वो संत थे न और उनकी जो पत्नी थी वो संत थोड़े ही थी, वो क्या जाने, बगैर पढ़ी-लिखी थी? भावनाओं की दृष्टि से उदारता थी नहीं। जब घर में लौटकर के आए तो उनकी पत्नी ने कहा कि ले आए गन्ना? हाँ ले आए, तो एक ही मिला। अरे देवी! मिले तो बहुत-से थे, पर ऐसे फूल जैसे बच्चे थे, मुस्करा रहे थे, माँग रहे थे, मैंने दे दिए। उसने कहा कि दे दिए? कहा कि हाँ, तो उन्होंने एक गन्ना था, सो उसे उठाकर दे मारा पीठ में तो उसके दो टुकड़े हो गए तो उन्होंने कहा कि देवी! तुम्हारे हाथ-पैर चूमने लायक हैं। मैं तो इसके टुकड़े कर भी नहीं पाता, तुमने तो दो बराबर-बराबर टुकड़े कर दिए। आइए हम और तुम दोनों जने खाएँ और आनंद से रहें। दोनों ने हँसी-खुशी से उसका रसास्वादन किया।

इसी तरीके से एक विदेशी पति-पत्नी हुए, नाम मुझे इस समय याद नहीं है। तो एक की शादी की वर्षगाँठ थी तो एक ने कहा कि मेरे पति को घड़ी की चैन अच्छी लगती है। एक ने कहा कि मेरी पत्नी को क्लिप अच्छी लगती है। वो गया क्लिप लेने बालों में लगाने के लिए और अपनी घड़ी बेच दी और महिला दुकान पर गई और अपने बाल कटा दिए और बालों को बेचकर घड़ी की चैन लाई।

शादी की वर्षगाँठ थी। दोनों जन घर में घुसे और उसके सिर से रूमाल बँधा था, उसने कहा कि मैं तेरे लिए अपने हाथ से बालों में क्लिप लगाऊँगा और वो क्लिप थमाने लगा, बाल कहाँ थे? बाल तो थे ही नहीं और उसने कहा कि मैं अपने हाथ से अपने पति की कलाई में घड़ी में चैन बाँधूँगी, पर वो घड़ी नहीं थी, पर प्यार का पारावार था, निर्धन थे, लेकिन निर्धन होते हुए भी उनकी जीवात्मा और विश्वास एवं आस्था एकदूसरे के लिए ऐसे उड़ेले गए। ऐसे समा गए एकदूसरे में। धन्य है वो दांपत्य जीवन, जो इतना विश्वास, आस्था के साथ में अपना जीवनयापन करते हैं। मैं चाहूँगी कि ये जो मैंने अपने परिजनों के लिए कहा है और जो उदाहरण दिए हैं, इसलिए दिए हैं कि आप इस रास्ते पर चलिए। ये घाटे का नहीं है, ये नफे का सौदा है, चाहे वो लड़की हो, लड़का हो, कोई भी हो वो दोनों के लिए ही समान है। इसी रास्ते पर चलिए,आप सबको आशीर्वाद।

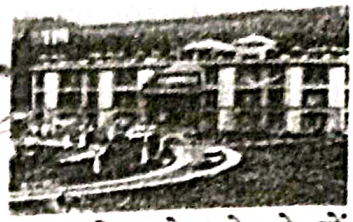
॥ ॐ शांति ॥

पक्षीराज गरुड़ के पास जिज्ञासु प्राणियों का ताँता लगा हुआ था। एक ने पूछा—"पक्षीराज! साधना का क्या अभिप्राय है?"

गरुड़ बोले—"साधना का अभिप्राय जीवन को साधने से है। जो आत्मनिरीक्षण, आत्मशोधन, आत्मनिर्माण एवं आत्मविकास की विधियों द्वारा अपने अंतर्जगत् का नियमित पर्यवेक्षण करते रहते हैं और उसके अनुरूप अपने अंतरंग में सुसंस्कारिता का समावेश करते रहते हैं, उन्हें ही नर-से-नारायण बन पाने का सुयोग मिल पाता है। इसे ही दूसरे शब्दों में जीवन-साधना कह सकते हैं।

विश्वविद्यालय परिसर से –254

राष्ट्र-निर्माण का आधार बना विश्वविद्यालय



देव संस्कृति विश्वविद्यालय केवल एक शिक्षण संस्थान नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, आध्यात्मिक चेतना एवं जीवनमूल्यों के संवर्द्धन का एक जीवंत केंद्र है। पूज्य गुरुदेव की दिव्यदृष्टि एवं आदर्शों से प्रेरित यह विश्वविद्यालय शिक्षा को संस्कार, साधना एवं राष्ट्र-निर्माण से जोड़ने का अद्वितीय कार्य कर रहा है। गंगा की गोद में स्थित यह विश्वविद्यालय विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास के साथ-साथ उनके नैतिक, सांस्कृतिक एवं आत्मिक उत्थान का भी माध्यम बन रहा है।

इसी पावन एवं आध्यात्मिक वातावरण से अभिभूत होकर विगत दिनों उत्तराखंड के माननीय मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी जी ने विश्वविद्यालय आगमन के अवसर पर इसकी विशेष सराहना की। विश्वविद्यालय परिसर में आगमन पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने उनका स्वागत एवं अभिनंदन करते हुए अंगवस्त्र एवं स्मृतिचिह्न भेंट किया।

आगमन उपरांत मुख्यमंत्री जी ने विश्वविद्यालय परिसर स्थित प्रज्ञेश्वर महादेव मंदिर में दर्शन-पूजन कर महाकाल एवं माँ गायत्री की आराधना की तथा दिव्य आध्यात्मिक ऊर्जा का अनुभव किया। मंदिर परिसर की शांति, गरिमा एवं आध्यात्मिक चेतना की प्रशंसा करते हुए उन्होंने इसे आत्मिक उन्नयन का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र बताया। मुख्यमंत्री जी ने विश्वविद्यालय के अनुशासित एवं संस्कारमय वातावरण की सराहना करते हुए कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय युवा-पीढ़ी को भारतीय संस्कृति, नैतिक मूल्यों एवं आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

उन्होंने विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षा, संस्कृति एवं राष्ट्र-निर्माण के क्षेत्र में किए जा रहे प्रयासों को प्रेरणादायी बताते हुए इसे उत्तराखंड ही नहीं, बल्कि संपूर्ण राष्ट्र के लिए गौरव का विषय बताया।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विशेष प्रशिक्षण एवं कार्यशाला कार्यक्रम के सफल समापन पर ब्राज़ील से आए प्रतिनिधिमंडल के सम्मान में भावपूर्ण विदाई समारोह का आयोजन किया गया। अपने प्रवास के दौरान प्रतिभागियों ने प्रतिकुलपति जी के मार्गदर्शन में भारतीय ज्ञान-परंपरा, विशेषकर योग एवं आयुर्वेद के विभिन्न आयामों को समझने, सीखने और आत्मसात् करने का अवसर प्राप्त किया।

विदाई अवसर पर प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों ने अपने अनुभव साझा करते हुए कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय में बिताया गया समय उनके जीवन का अविस्मरणीय अध्याय बन गया है। इस अवसर पर संबोधित करते हुए प्रतिकुलपति जी ने कहा कि भारतीय संस्कृति का मूल भाव वसुधैव कुटुम्बकम् है तथा ऐसे अंतरराष्ट्रीय संवाद वैश्विक सद्भाव और आपसी समझ को सशक्त बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कार्यक्रम के अंत में अतिथियों को स्मृतिचिह्न भेंट कर उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएँ दी गईं।

विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में श्री भारतमाता मंदिर की संस्थापिका एवं श्री भारतमाता सेवाश्रम न्यास

की अध्यक्षा, साध्वी हेमलता दीदी जी का विश्वविद्यालय परिसर में आगमन हुआ। प्रतिकुलपति जी द्वारा उनका स्वागत एवं अभिनंदन किया गया।

इस अवसर पर साध्वी हेमलता जी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक वातावरण की सराहना करते हुए कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय भारतीय संस्कृति, संस्कार एवं राष्ट्रचेतना के संवाहक के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आगमन के उपरांत उन्होंने प्रतिकुलपति जी से शिष्टाचार भेंट की। इस दौरान दोनों के मध्य राष्ट्र-निर्माण, संस्कार आधारित शिक्षा, युवा-पीढ़ी के नैतिक उत्थान एवं भारतीय संस्कृति के संरक्षण जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर सारगर्भित चर्चा हुई।

विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में हिमाचल प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष श्री कैप्टन रामेश्वर सिंह ठाकुर, आईपीएस एवं उत्तराखंड लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष श्री रविदत्त गोदियाल विश्वविद्यालय परिसर पहुँचे। प्रतिकुलपति जी द्वारा दोनों विशिष्ट अतिथियों का स्वागत किया गया।

विश्वविद्यालय परिसर भ्रमण के दौरान अतिथियों ने विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों, प्रयोगशालाओं तथा आध्यात्मिक गतिविधियों का अवलोकन किया। उन्होंने विश्वविद्यालय की समन्वित शिक्षा-प्रणाली की विशेष सराहना की थी, जिसमें आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ संस्कार, योग, नैतिक मूल्यों एवं आध्यात्मिकता को समान रूप से महत्त्व दिया जाता है।

प्रतिकुलपति जी से उनकी सौहार्दपूर्ण भेंट के दौरान शिक्षा के माध्यम से युवा निर्माण, नैतिक मूल्यों के संवर्द्धन तथा राष्ट्र-निर्माण में शिक्षण संस्थानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका जैसे विषयों पर सार्थक चर्चा हुई। विशिष्ट अतिथियों ने विश्वविद्यालय द्वारा युवाओं में अनुशासन, संस्कार एवं नैतिक चेतना के विकास हेतु किए जा रहे प्रयासों की प्रशंसा करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय को एक आदर्श शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संस्थान बताया।

मीडिया एवं शिक्षा जगत् के बीच संवाद और सहयोग को नई दिशा देने हेतु विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में वरिष्ठ पत्रकार एवं टाइम्स ऑफ इंडिया डॉट कॉम के शिक्षा सहायक संपादक श्री संजय शर्मा जी का आगमन हुआ। मीडिया क्षेत्र में दो दशकों से अधिक अनुभव रखने वाले श्री शर्मा ने अपने प्रवास के दौरान विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से सौहार्दपूर्ण भेंट की।

इस अवसर पर शिक्षा, डिजिटल मीडिया, युवा सशक्तीकरण तथा वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में हो रहे परिवर्तनों जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर विस्तृत एवं सार्थक चर्चा हुई। संवाद के दौरान श्री शर्मा ने विद्यार्थियों के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म के प्रभावी

राजा अपने राज्य के लिए मंत्री पद हेतु व्यक्तियों का चयन कर रहे थे। उन्होंने कुलगुरु से पूछा—"मंत्री में कौन-सी योग्यताओं का होना अनिवार्य है?" कुलगुरु ने उत्तर दिया—"तुम्हारा मंत्री सज्जन होना चाहिए।"

राजा ने पूछा—"सज्जनता की पहचान कैसे हो?" कुलगुरु बोले—"विनम्रता से। विद्या का वास्तविक प्रतिफल ये ही है।" राजा की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

उपयोग, केरियर मार्गदर्शन तथा शिक्षा-क्षेत्र में उभरते अवसरों पर अपने विचार साझा किए।

उल्लेखनीय है कि श्री संजय शर्मा वर्ष-2006 से टाइम्स ऑफ इंडिया समूह से जुड़े हुए हैं तथा बोर्ड परीक्षा परिणाम, रोजगार संबंधी सूचनाएँ एवं विदेश में शिक्षा जैसे विषयों पर उनकी विशेष विशेषज्ञता रही है।

हाल ही में प्रेस क्लब हरिद्वार के अध्यक्ष, वरिष्ठ पत्रकार, नवनिर्वाचित महामंत्री सहित प्रतिनिधिमंडल ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँच कर प्रतिकुलपति जी से सौहार्दपूर्ण भेंट की। प्रतिकुलपति जी से भेंट के दौरान मीडिया, शिक्षा, सामाजिक जागरूकता एवं जनसंपर्क जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर सार्थक चर्चा हुई।

शैक्षणिक ज्ञान को मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं से जोड़ने की दिशा में देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने विगत दिनों Society for Promotion of Youth and Masses (SPYM), नई दिल्ली के साथ एक महत्त्वपूर्ण समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए। एमओयू पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी एवं SPYM के निदेशक श्री राजेश जी ने हस्ताक्षर किए।

इस साझेदारी के अंतर्गत विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के विद्यार्थियों को SPYM द्वारा संचालित सरकारी नशा उपचार केंद्रों एवं पुनर्वास केंद्रों में इंटर्नशिप तथा फील्ड एक्सपोजर का अवसर प्राप्त होगा। विद्यार्थियों को नशा रोक-थाम, परामर्श कौशल, मनोसामाजिक हस्तक्षेप तथा सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाएगा।

दोनों संस्थान संयुक्त रूप से मानसिक स्वास्थ्य, नशामुक्ति एवं पुनर्वास विषयों पर कार्यशालाएँ, जागरूकता अभियान तथा शोधकार्य संचालित करेंगे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की भारतीय पद्धतियों—गायत्री मंत्र चिकित्सा, यज्ञ आधारित हस्तक्षेप एवं जीवन-साधना को SPYM के क्लिनिकल प्रोटोकॉल के साथ जोड़कर उनके वैज्ञानिक मूल्यांकन पर भी कार्य किया जाएगा।

विगत दिनों युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय, भारत सरकार के तत्त्वावधान में आयोजित विकसित भारत युवा सांसद—2026 कार्यक्रम का सफल आयोजन इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियर्स, देहरादून में संपन्न हुआ। इस वर्ष कार्यक्रम का मुख्य विषय केंद्रीय बजट—2026 विकसित भारत—2047 युवा संचालित बजट रहा, जिसमें युवाओं ने देश के समग्र विकास में अपनी सहभागिता एवं विचारों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया।

प्रतिभागियों ने अपने तर्क, वक्तृत्व कौशल एवं नेतृत्व-क्षमता का उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए कार्यक्रम को सार्थक बनाया। प्रतियोगिता में देव संस्कृति विश्वविद्यालय की छात्रा शांभवी श्रुति ने अपने प्रभावशाली वक्तव्य एवं तार्किक प्रस्तुति के बल पर राज्यस्तर पर प्रथम स्थान प्राप्त कर देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं उत्तराखंड प्रदेश का गौरव बढ़ाया।

इस उपलब्धि के साथ अब शांभवी विकसित भारत युवा सांसद—2026 के राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम में उत्तराखंड राज्य का प्रतिनिधित्व करेंगी। इस गौरवपूर्ण उपलब्धि के उपरांत शांभवी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंट कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने उन्हें उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएँ देते हुए राष्ट्रीय स्तर पर उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए प्रेरित किया। ❑

विज्ञान का सृजन-अनुसंधान

विज्ञान का सृजन-अनुसंधान भावी युग का भविष्य है। बीती सदी के आरंभ से अंत तक और वर्तमान सदी के वर्तमान तक—विज्ञान और वैज्ञानिकता तीव्र गति से समृद्ध हुए हैं। इसके आविष्कार व अनुसंधान के निष्कर्षों ने पूरी धरती को आच्छादित करके अब अंतरिक्ष में अपने प्रभाव की होड़ लगानी शुरू कर दी है। पदार्थ की छान-बीन से लेकर ऊर्जा की पड़ताल तक, भाप वाले इंजन से लेकर कंप्यूटर तक, धरती की मिट्टी से लेकर आकाश में उपग्रह भेजने तक सभी ओर विज्ञान ने अपने कदम बढ़ाए हैं।

सुबह से लेकर शाम तक, घर के कोने-कोने तक, जीवन के हर पहलू में विज्ञान ने अपनी पहुँच-पकड़ बनाई है। लोकदृष्टि में विज्ञान की प्रामाणिकता बढ़ी है। सामान्य जन हों या विशेषज्ञ विद्वान, सभी विज्ञान को प्रमाण मानने लगे हैं। अब तो विज्ञान का नाम लेकर बाजार और व्यापार में सामान की खरीद-फरोख्त होने लगी है। शास्त्र-प्रमाण की जगह साइन्स-प्रमाण की मान्यता बढ़ी है।

विज्ञान और वैज्ञानिकता के ये बढ़ते पाँव तब तक शुभ हैं, जब तक इनकी दिशा सृजन की ओर है, लेकिन जब विज्ञान विनाश की ओर गति करता है, तो उभरने वाला चित्र और दृश्य अनेकों भय पैदा करता है। पहले कभी युद्ध में तलवार का प्रयोग होता था। अब नए बदलाव ने बंदूकों-तोपों को पीछे छोड़ दिया है। अब अणु-परमाणु की ऊर्जा ने हथियार का रूप लिया है। विषैले रसायनों एवं विषाणुओं ने भी अपने मारक व घातक रूप लिए हैं। अभी पिछले दिनों इक्कीसवीं सदी के इक्कीस साल होते-होते पूरी दुनिया कोरोना की लपेट-चपेट में आ गई थी। धरती के हर घर ने मृत्यु का तांडव देखा। मरने वाले इतने बढ़े कि मृत्यु का शोक मनाने वाले कम पड़ गए। इस वैश्विक महामारी विश्व विपदा के बारे में अनेकों तरह की छान-बीन के बाद कुछ विचित्र वैज्ञानिक निष्कर्ष सामने आए। इस बारे में कथा यह उजागर हुई कि दुनिया भर में कोहराम मचाने वाले इस कारनामे ने साम्राज्यवाद का स्वप्न सँजोने वाले

जो हुआ, उसका दोषी कौन ? विज्ञान या फिर किसी की विनाशक सोच। निश्चित ही दोषी—दूषित मनुष्य की सोच है, मानव की विकृत बुद्धि है। ऐसे लोग भले ज्यादा न हों, पर वे जहाँ हैं, जो भी हैं; उनके मन-मस्तिष्क असुरता के अंधकार से अंधकारित हैं। इनकी आकृति भले ही मनुष्य की है, पर प्रकृति निश्चित ही असुरों की है।

एक विशाल देश की छोटी-सी प्रयोगशाला में जन्म लिया था। यह सब भी विज्ञान के अनुसंधान का विनाशक परिणाम था।

जिन विषाणुओं ने कोरोना को जन्म दिया था, उन्हें जन्म देने वाली प्रकृति नहीं थी। ये तो वैज्ञानिक प्रयोगों की प्रयोगशाला के परिणाम थे। पिछली शताब्दी के महायुद्ध में जब एक छोटे-से परमाणु बम से जापान झुलसा था, तब भी स्थिति इतनी खतरनाक नहीं हुई थी, क्योंकि हाहाकार हिरोशिमा में हुआ था। विनाश के विषधरों ने बस नागासाकी

में अपने फन फैलाए थे, लेकिन इस नई परिस्थिति में तो अणुओं से जन्म लेने वाले बम के भस्मासुर ने किसी को भस्म नहीं किया, बल्कि अणुओं का विष—नन्हे-नन्हे न दिखने वाले विषाणु बनकर सब ओर फैल गया। किसी के हाथ के हथियार ने भी किसी को इतना नहीं डराया होगा, जितनी कि उसकी नाक की छींक डराने लगी। इन नन्हे विषाणुओं ने मनुष्य के श्वास में रोक लगा दी। श्वासों से हुए अवरोध से घुट-घुटकर लोग मरने लगे। गले मिलने, प्रेम से हाथ मिलाने की तो दूर; लोग आपस में छूने में सिहरने लगे। आपस के घनिष्ठ संबंधों के बावजूद दूर-दूर रहने के लिए मजबूर रहने लगे।

जो हुआ, उसका दोषी कौन? विज्ञान या फिर किसी की विनाशक सोच। निश्चित ही दोषी—दूषित मनुष्य की सोच है, मानव की विकृत बुद्धि है। ऐसे लोग भले ज्यादा न हों, पर वे जहाँ हैं, जो भी हैं; उनके मन-मस्तिष्क असुरता के अंधकार से अंधकारित हैं। इनकी आकृति भले ही मनुष्य की है, पर प्रकृति निश्चित ही असुरों की है।

भले ही ये अपनी करतूतों को कितना ही छिपाते फिरें, लेकिन इनके कारनामों का सच किसी-न-किसी रूप में अपनी कहानी अपने आप कहने लगता है। हवाएँ अपनी सुन-गुन में इसे सुनाने-गुनगुनाने लगती हैं। ऐसे लोग और उनकी ऐसी सोच इनके लाख छिपाने पर भी छिपती नहीं है। यह व्यक्ति के रूप में हों या किसी देश के रूप में, प्रकृति के द्वारा इनकी पहचान असंभव नहीं है। समय आने पर प्रकृति का दंड विधान इन्हें दंडित कर ही देगा। जहाँ तक बात विज्ञान की है, तो यह सदा से जीवन के लिए स्वीकार्य रहा है।

वैदिक युग के ऋषि वैज्ञानिक ही थे, जिन्होंने अपने युग में मानव मेधा को चकित करने वाले अनुसंधान किए थे। जैसे कि अथर्ववेद के ऋषि ने सात सौरमंडल होने की बात कही है। **'यस्मिन सूर्या आर्पिताः सप्त साकम्'** ॥ अथर्ववेद 13.3.10 ॥ ऋग्वेद के ऋषि का कथन है कि सूर्य अनेक हैं— **'सप्त दिशो नाना सूर्याः ॥'** ऋग्वेद 9.114.3 ॥ अथर्ववेद के ऋषि ने बताया—**'ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ॥'** अथर्ववेद 1.1.1 ॥ सूर्य की 7 × 3 = 21 प्रकार की किरणों से ही सारे रंग बनते हैं। इसका मतलब यह है कि सूर्य की सात रंग की किरणें गहरी, मध्यम और हलकी होकर 21 प्रकार की हो जाती हैं। ये ही सभी वस्तुओं को रंग प्रदान करती हैं। सूर्य और पृथ्वी, दोनों में आकर्षण शक्ति होने की बात ऋग्वेद के ऋषि ने कही है— **'एकोअन्यत्-चकृषे विश्वम् आनुषक् ॥'** ऋग्वेद 1.52.14 ॥

भावी युग के भविष्य में विज्ञान के अनुसंधान से यह असुर दृष्टि तिरोहित होगी। भावी युग की भवितव्यता असुरों को टिकने-ठहरने-उत्पात मचाने का कोई अवसर न देगी। सूर्य उदय होने पर जो स्थिति उल्लुओं के समुदाय और चमगादड़ों के समूह की होती है, ठीक वही स्थिति असुरों-राक्षसों की बनेगी। फिर ये भी कहीं इधर-उधर अपनी जान बचाते फिरेंगे, इनकी स्थिति तब स्वयं विपन्न होगी।

ऋग्वेद और अथर्ववेद, दोनों में भूमि के चारों ओर विद्यमान ओजोन परत का उल्लेख है। ऋग्वेद में ओजोन की परत के लिए 'महत् उल्ब' शब्द आया है और उसे स्थविर अर्थात मोटी परत कहा है। अथर्ववेद में इसका रंग सुनहरा बताया है। गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए बनी झिल्ली के लिए 'उल्ब' शब्द है। पृथ्वी की रक्षा के लिए यह ओजोन परत है—**'महत् तदुल्बं स्थविरं तदासीद् येनाविष्टितः**

प्रविवेशिथापः ॥' ऋग्वेद 10.51.1 ॥, **'तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद् हिरण्ययः ॥'** अथर्ववेद 4.2.8 ॥ वेदों में जल बनाने के सूत्र का भी उल्लेख है। इसमें कहा है कि मित्र और वरुण के संयोग से जल बनता है। इसके मंत्र में मित्र और वरुण शब्दों से क्रमशः ऑक्सीजन और हाइड्रोजन की सूचना है। ऋग्वेद के चार मंत्रों (7.33.10 से 13) में इस विषय को स्पष्ट किया गया है। इसी के साथ यजुर्वेद में जल को प्रदूषित न करने का निर्देश है। **'माऽपोः, मा ओषधीः हिंसीः ॥'** यजुर्वेद 6.22 ॥, **'अपः पिन्व, ओषधीर्जिन्व ॥'** यजुर्वेद 14.8 ॥

जल की भाँति वेद ने वायु में अमृत तत्त्व को स्वीकारा है। ऋग्वेद में वायु में अमृत का खजाना बताया है—**'यददो वात ते गृहेऽ मृतस्य निधिर्हितः। ततो नो देहि जीवसे ॥'** ऋग्वेद 10.186.3 ॥ अथर्ववेद ने वायु को सारे रोगों की चिकित्सा बताकर उसे 'विश्वभेषज' कहा है—**'वात... त्वं हि विश्वभेषज ॥'** अथर्ववेद 4. 13.3 ॥

विज्ञान व वैज्ञानिकता के—वेदों में अनेकों प्रमाण हैं। अगर वेदकाल में विज्ञान का विवरण देखें, तो इसमें चिकित्सा शास्त्र, अभियांत्रकी के विविध रूप, भौतिकी, रसायन, जीवन-विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, ब्रह्मांड विज्ञान आदि का विस्तार प्राप्त होता है। इस वेदसत्य से यह तो स्पष्ट है कि वैज्ञानिक ऋषियों के लिए विज्ञान, वैज्ञानिकता एवं वैज्ञानिक दृष्टि सहज स्वीकार थी। हाँ, इस प्रकरण में एक सच और भी प्रकट होता है कि विज्ञान और वैज्ञानिकता के प्रति दो दृष्टि या दृष्टिकोण मिलते हैं। इनमें से प्रथम है—(1) ऋषि दृष्टि—जिससे विज्ञान के सृजन-अनुसंधान संभव होते हैं। इसके द्वितीय क्रम में असुर दृष्टि है, जिसके द्वारा विज्ञान के विनाशक-विध्वंसक अनुसंधान संभव होते हैं।

विज्ञान का सत्य इससे बड़ा स्पष्ट हो जाता है। ऋषियों के हाथों से विज्ञान की अमृत विद्या प्रकट होती है; जबकि असुरों के हाथों से इसका विषैला, विनाशक और विध्वंसक रूप प्रकट होता है। युग कोई भी रहे, विज्ञान के ये ही दो रूप बने रहते हैं। विज्ञान सृजनकारक है अथवा विनाशक, इस पर निर्भर करता है कि इसे प्रयोग करने वाले ऋषि हैं अथवा असुर। विज्ञान व वैज्ञानिकता के परिदृश्य में ऋषि-दृष्टि का प्रयोग हो रहा है अथवा असुर-दृष्टि का।

अगर वर्तमान की स्थिति-परिस्थिति का आकलन करें, तो अभी बाहुल्य व वर्चस्व असुर-दृष्टि का है। भले ही यह स्वयं को लोकदृष्टि से कितना ही छिपाकर रखे, लेकिन असमय-कुसमय इसका विषैला-विनाशक व विध्वंसक रूप प्रकट हो जाता है। फिर चाहे यह अस्त्रों में प्रकट हो या विविध प्रकार के रसायनों व विषाणुओं-जीवाणुओं में। जहाँ तक ऋषि-दृष्टि की बात है, तो वह भी चिकित्सा-जीवन की सुविधा-सुख के उपाय खोजने के लिए अपने प्रयोग कर रही है।

भावी युग के भविष्य में विज्ञान के अनुसंधान से यह असुर-दृष्टि तिरोहित होगी। भावी युग की भवितव्यता असुरों को टिकने-ठहरने-उत्पात मचाने का कोई अवसर न देगी। सूर्य उदय होने पर जो स्थिति उल्लुओं के समुदाय और चमगादड़ों के समूह की होती है, ठीक वही स्थिति असुरों-राक्षसों की बनेगी। फिर ये भी कहीं इधर-उधर अपनी जान बचाते फिरेंगे, इनकी स्थिति तब स्वयं विपन्न होगी। फिर ये किसी भी तरह की आपदा-विपदा उत्पन्न न कर सकेंगे।

विज्ञान-वैज्ञानिकता ऋषि-दृष्टि से युक्त होकर, ऋषि-चिंतन एवं ऋषि-चेतना से समन्वित होकर सृजनकारक-जीवनरक्षक, सुखदायक भूमिका को निभाने में संलग्न होगा। विज्ञान के इस सृजन-अनुसंधान से संपन्न होकर भावी भव्य भारत के चार स्तंभ—ज्ञान, शौर्य, उद्योग एवं सेवा और भी अधिक सुदृढ़ होंगे। ❑

शताब्दी साधना वर्ष की अलौकिक परिणतियाँ

शताब्दी साधना वर्ष में अखण्ड ज्योति के सभी पाठकों और गायत्रीसाधकों के लिए अनुभूतियाँ संकलित की गई हैं, जिनमें हर स्तर के साधकों की गहरी साधना और तप की प्रेरणादायी झलक है। इन अनुभूतियों ने यह सिद्ध किया है कि 'शताब्दी साधना वर्ष' की योजना सार्थक रही।

इसके तहत निर्धारित अनुशासनों के माध्यम से जीवन के हर पक्ष में साधकों ने अनुकरणीय विकास किया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि इन उपलब्ध अनुभवों को जनसामान्य के बीच अधिक गहराई से पहुँचाया जाए।

साप्ताहिक प्रवचन, साधना सप्ताह, प्रशिक्षण वर्ग और विशेष आयोजनों के माध्यम से इन बातों को प्रसारित किया जा सकता है। ऐसा प्रयास न केवल आत्मिक चेतना को जाग्रत करेगा, बल्कि साधना के प्रति एक व्यापक वातावरण भी निर्मित करेगा।

साधना वर्ष के साधकों से चार अनुरोध

(1) नियमितता और संयम—यह सिद्ध हो चुका है कि नियमित साधना, संयमित जीवनशैली और सतत अनुशासन, आत्मिक उन्नति की कुंजी हैं। इसलिए कृपया इस क्रम को बनाए रखें।

(2) लिखित अनुभव भेजें—जिन्होंने साधना वर्ष में भाग लिया था, वे अपने अनुभव और उपलब्धियों को अवश्य लिखें, ताकि अन्य लोग भी उनसे प्रेरणा ले सकें। इससे साधना-पथ पर सामूहिक मार्गदर्शन संभव हो सकेगा।

(3) नव संकल्प लें—नया संवत्सर एक नई शुरुआत का अवसर होता है। इस समय स्वयं को और गहराई से साधना में संलग्न करने का निश्चय करें। छोटे-छोटे दैनिक प्रयोगों से बड़े परिवर्तन लाए जा सकते हैं।

(4) अन्य को प्रेरित करें—अपने आस-पास के लोगों को भी साधना की दिशा में प्रेरित करें। अपने अनुभव को साझा करें और उन्हें भी अनुशासनपूर्वक जीवन जीने के लिए प्रेरित करें।

गायत्री परिवार के कई साधकों ने वर्षभर विशेष साधना कर जीवन को नए आयामों की ओर अग्रसर किया। उन्होंने समय सीमा, नियमों, अनुशासन और निष्ठा का पालन करते हुए अपने साधना सप्ताह, उपवास, मौन, मंत्र-जप, यज्ञ आदि के अनुभवों से सिद्ध किया कि यदि संकल्प मजबूत हो तो जीवन-परिवर्तन संभव है।

अब यह आवश्यक है कि जो अनुभव और कार्य प्रक्रियाएँ सामने आई हैं, उन्हें एक नियमित प्रणाली के माध्यम से दूसरों तक पहुँचाया जाए। हर सप्ताह के लिए स्पष्ट कार्यक्रम, साधना-विधि, अनुशासन और स्वावलंबन से जुड़े अभ्यास हों, जिन्हें अपनाकर साधक स्वयं में और समाज में रूपांतरण ला सकें।

(1) साप्ताहिक साधना दिनचर्या—हर साधक एक दिन विशेष को 'साधना दिन' मानते हुए उपवास, मौन, यज्ञ, जप आदि के साथ आत्मिक अनुशासन में रहे।

(2) सामूहिक अभ्यास—जो लोग पास-पड़ोस में रहते हैं, वे एकदूसरे से मिलकर सामूहिक रूप से साप्ताहिक साधना दिन मना सकते हैं। इससे प्रेरणा और सहभागिता का वातावरण बनेगा।

(3) अनुभवों को साझा करें—जिन्होंने कोई विशेष अनुभव या साधना से संबंधित उपलब्धि प्राप्त की हो, वे उसे लिखित रूप में भेजें, ताकि वह दूसरों के लिए प्रेरणा बन सके।

(4) विशेष अवसरों पर विशेष कार्यक्रम—वसंत पंचमी, गायत्री जयंती, गुरुपूर्णिमा जैसे अवसरों पर विशेष उपवास, साधना और स्वाध्याय के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए।

(5) विस्तार हेतु योजनाबद्ध कार्य—साधकों को चाहिए कि वे निकट के क्षेत्रों में जाकर नए लोगों को साधना की प्रेरणा दें और संगठन से जोड़ें।

आज का समय विशेष रूप से साधना और आत्मिक विकास के लिए उपयुक्त है। जो भी साधक इस अवसर का लाभ उठाएँगे, वे न केवल स्वयं लाभान्वित होंगे, बल्कि समाज के लिए भी प्रेरणा बनेंगे।

गायत्री परिवार का यह प्रयोग विश्व-कल्याण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हो सकता है। अनेक साधकों ने वर्षभर की साधना का अनुकरणीय प्रदर्शन करते हुए अपने जीवन को दिशा दी है।

इस प्रक्रिया में भाग लेने वालों की संख्या भी धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है, विशेष रूप से गाँवों और कसबों से अधिक सहभागी सामने आ रहे हैं। साधना, संयम, उपवास, स्वाध्याय, यज्ञ और सेवा जैसे प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि साधक न केवल आत्मिक रूप से उन्नत हुए, बल्कि अपने परिवेश को भी प्रेरित कर सके।

इसके साथ ही निम्नांकित कुछ प्रयोगों को नियमित रूप से करते हुए आगे बढ़ने की प्रक्रिया को सुनिश्चित किया जा सकता है—

(1) स्वस्थ भावना—हर जिले या क्षेत्र में साधकों के बीच एक सकारात्मक भावना होनी चाहिए कि कौन अधिक नियमित, अनुशासित और प्रेरणादायक ढंग से साधना कर रहा है। इससे क्षेत्रीय समन्वय और प्रेरणा की लहर दौड़ेगी।

(2) ग्राम/ क्षेत्र आधारित योजनाएँ—गाँवों और नगरों में 20 या उससे अधिक साधकों के समूह बनाए जाएँ, जो नियमित रूप से साधना करें और प्रेरणा फैलाएँ। हर समूह को स्थानीय प्रतिनिधि का मार्गदर्शन और प्रशिक्षण भी मिले।

(3) महिलाओं की भागीदारी—महिलाओं में साधना के प्रति रुचि और उत्साह अत्यंत प्रभावशाली रहा है। उनके लिए विशेष रूप से उपयुक्त साधनापद्धतियाँ और मार्गदर्शन दिए जाएँ, ताकि वे भी समाज-निर्माण में अग्रणी भूमिका निभा सकें।

(4) युवाओं का समर्पण—किशोर व युवा पीढ़ी में जागरूकता और निष्ठा से साधना के कार्यक्रम संचालित किए जा सकते हैं। उनके लिए अलग प्रेरणाशैली और तकनीकी माध्यम उपयोग किए जाएँ।

(5) साप्ताहिक आयोजन और मूल्यांकन—हर सप्ताह/ पखवाड़े में समीक्षा की व्यवस्था हो, ताकि साधना का क्रम सुचारु बना रहे और आवश्यक मार्गदर्शन तत्काल उपलब्ध हो सके।

(6) स्थायी स्वरूप की ओर—साधना वर्ष का यह प्रयोग केवल अल्पकालिक नहीं, बल्कि दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ने वाला हो। इसलिए इसे नियमित और संस्थागत स्वरूप देने की आवश्यकता है। यह समय साधना और जागरण का है। जो साधक अपने जीवन को गहराई से बदलना चाहते हैं, उनके लिए यह योजना स्वर्णिम अवसर है। यदि यह क्रम इसी प्रकार चलता रहा तो निकट भविष्य में सामाजिक जीवन का एक नया अध्याय आरंभ होगा, जहाँ आत्मिक अनुशासन और सेवा-प्रेरणा मिलकर नवयुग की नींव रखेंगे। ❑

गुरु-वेदना बँटाता हूँ

महाकाल का सहचर हूँ, जाग्रति शंख बजाता हूँ।
शिष्यों पर सद्गुरु का है ऋण, गुरु-वेदना बँटाता हूँ॥

क्रांति मशाल विश्वव्यापी मत्स्यावतार की शक्ति है।
परोक्ष रूप में सद्गुरु ही कच्छपावतार की भक्ति है॥
जग संव्याप्त वराहशक्ति से लोभ-स्वार्थ तज पाता हूँ।
शिष्यों पर सद्गुरु का है ऋण, गुरु-वेदना बँटाता हूँ॥

नृसिंह देव असुरत्व नाश हित रौद्र रूप दिखाते हैं।
प्रह्लाद सदृश प्रज्ञापुत्रों को निर्भय स्वयं बनाते हैं॥
जगहित याचक बन जाने में वामन की शक्ति पाता हूँ।
शिष्यों पर सद्गुरु का है ऋण, गुरु-वेदना बँटाता हूँ॥

अनीति उच्छेदन को परशु ऋषि का चमक उठा।
धर्म प्रतिष्ठित करने को दंड राम का दमक उठा॥
कौरवदल विनाश को केशव की शक्ति लख पाता हूँ।
शिष्यों पर सद्गुरु का है ऋण, गुरु-वेदना बँटाता हूँ॥

बुद्धावतार ही जन-जन में सोई संवेदना जगाते हैं।
सद्गुरु ही प्रज्ञावतार बन पुनः धरा पर आते हैं॥
बुद्धावतार का पूरक ही प्रज्ञा अवतार बताता हूँ।
शिष्यों पर सद्गुरु का है ऋण, गुरु-वेदना बँटाता हूँ॥

कोटि-कोटि दृढ़संकल्पों से देव शक्तियाँ मचल पड़ीं।
फिर भारत को दिव्य बनाने ऋषि सत्ताएँ उछल पड़ीं॥
नवयुग की अगवानी में आशा के दीप जलाता हूँ।
शिष्यों पर सद्गुरु का है ऋण, गुरु-वेदना बँटाता हूँ॥

गुरुवर अपना काम कर रहे आई अपनी बारी है।
जन्म शताब्दी शुभ नवयुग के स्वागत की तैयारी है॥
गुरुकार्यों में दृढ़ता का संकल्प पुनः दोहराता हूँ।
शिष्यों पर सद्गुरु का है ऋण, गुरु-वेदना बँटाता हूँ॥

—चक्रेश पाण्डेय

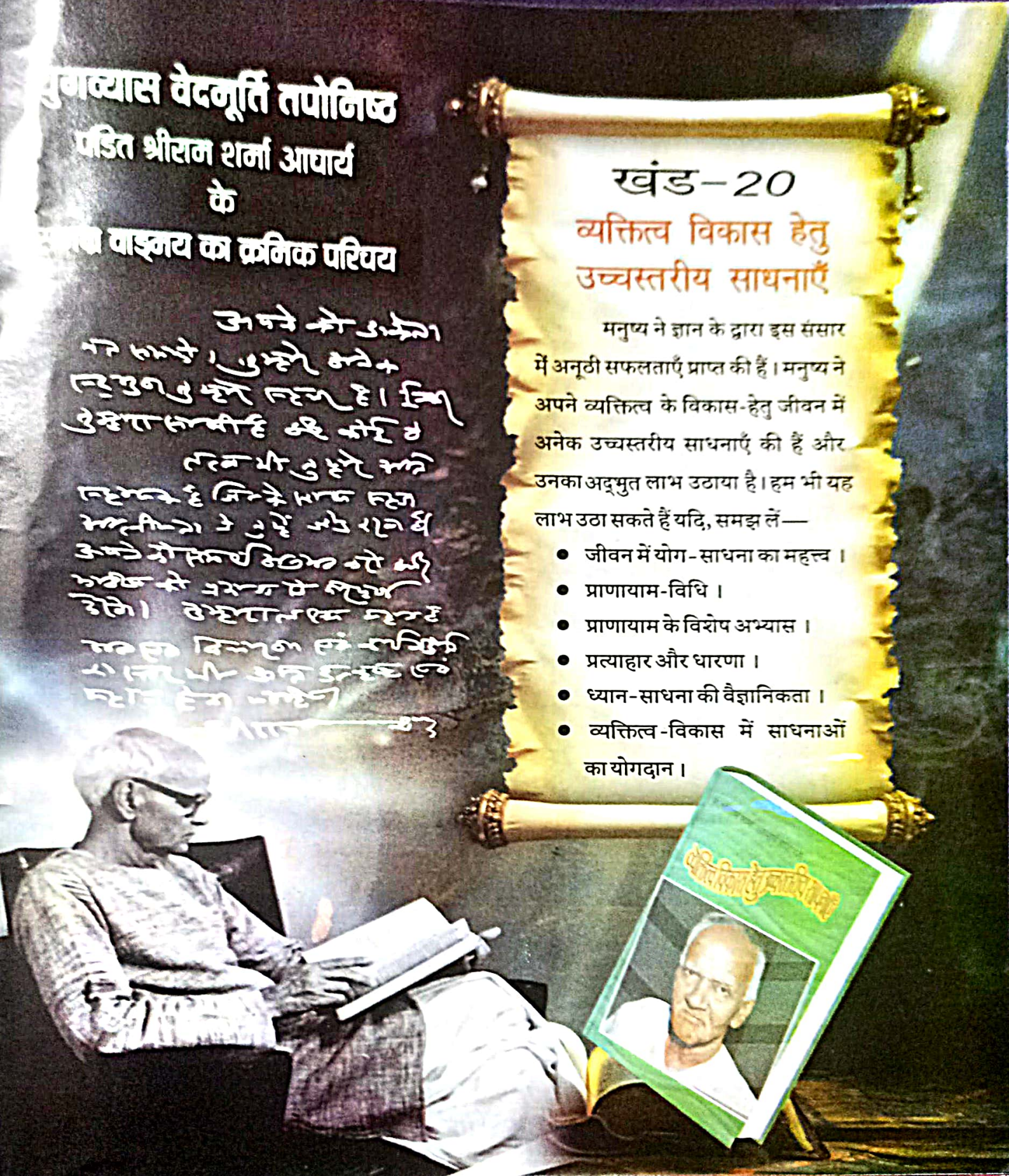
युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड–20

व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ

मनुष्य ने ज्ञान के द्वारा इस संसार में अनूठी सफलताएँ प्राप्त की हैं। मनुष्य ने अपने व्यक्तित्व के विकास-हेतु जीवन में अनेक उच्चस्तरीय साधनाएँ की हैं और उनका अद्भुत लाभ उठाया है। हम भी यह लाभ उठा सकते हैं यदि, समझ लें—

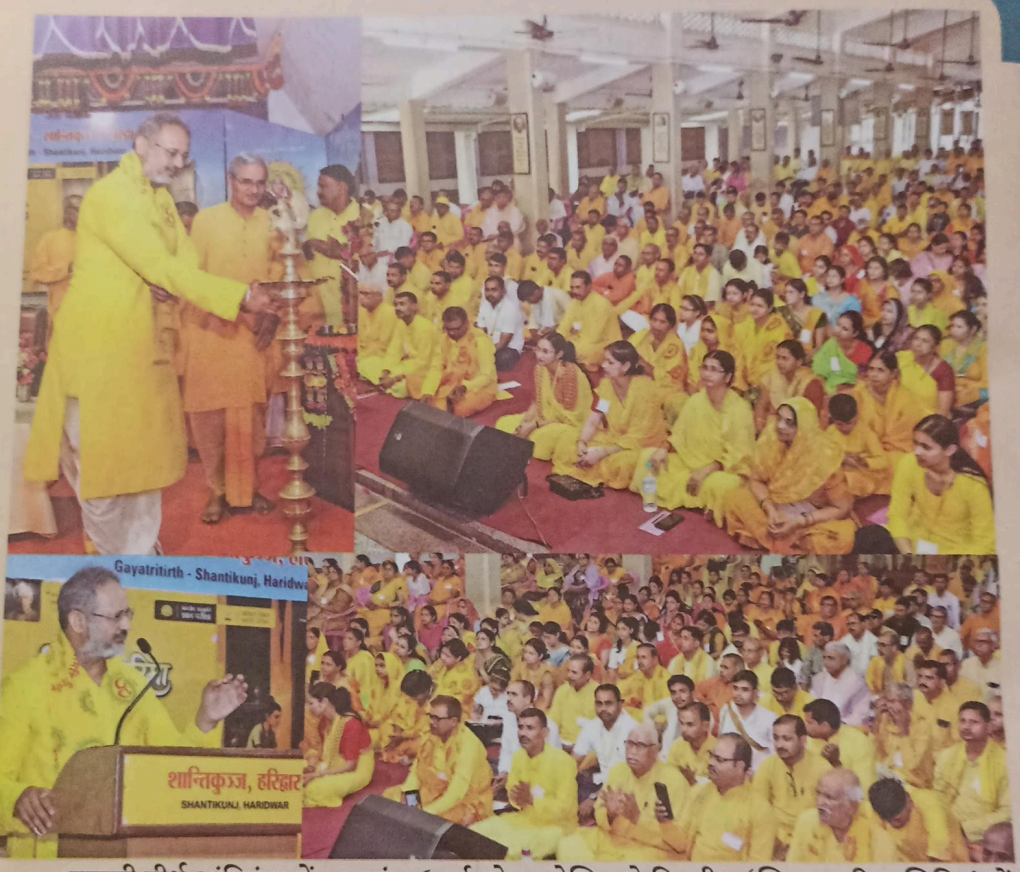
- जीवन में योग-साधना का महत्त्व।
- प्राणायाम-विधि।
- प्राणायाम के विशेष अभ्यास।
- प्रत्याहार और धारणा।
- ध्यान-साधना की वैज्ञानिकता।
- व्यक्तित्व-विकास में साधनाओं का योगदान।



अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01 / 7 / 2026
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026



गायत्री तीर्थ शांतिकुंज में 25 एवं 26 मई को आयोजित दो दिवसीय 'शिक्षक गरिमा शिविर' में उत्तर प्रदेश से पधारे लगभग 700 शिक्षकों ने उत्साहपूर्वक सहभागिता की। शिविर का उद्देश्य शिक्षकों में कर्त्तव्यबोध, नैतिक मूल्यों, संस्कारमय शिक्षा एवं राष्ट्रनिर्माण के प्रति जागरूकता विकसित करना रहा।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281 003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ई-मेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org